प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

जैनमित्र ऑफिस, चंदावाडी-सूरत।

* * * *

मुद्रक—

ईश्वरलाल किसनदास कापड़िया,

"जैन विजय" प्रि० प्रेस, खपाटिया चकला,

लक्ष्मीनारायणकी वाड़ी-सूरत।

प्रस्तावना।

यह भजनावली पाठकोंके समक्ष जो उपस्थित है वह हमारे कई वर्षोंके चंचल मनकी उन्मत्तताका फल स्वरूप है। श्री **समयसार**, **पंचास्तिकाय**, **परमात्मा प्रकाश**, **अनुभव** प्रकाश आदि अध्यात्म ग्रंथोंको पढ़ते हुए भी मनको आत्म समाधिमें स्थिर न करनेके कारण जब कभी मनमें आत्म-रसके झुकावसे कुछ उन्मत्तता हो जाती थी तब मुखसे गान रूप यह वचन रचना निकल जाती थी।

पिंगल व छंद शास्त्रसे बिल्कुल अजानकारी होनेके कारण यह भजनावली संभव है बहुतसे शास्त्रीय दोषोंसे भरपुर हो परन्तु पाठकोंको केवल शांतरस पान हेतु इस वचन रचनामें कुछ लाभ ले लेना चाहिये। इस भजनावलीके बहुतसे भागकी रचना होनेमें हम श्राविकाश्रम बम्बईकी संचालिकाएं श्रीमती **मगनबाईजी** सुपुत्री दानवीर सेठ माणिकचंद हीराचंद जौहरी, बम्बई तथा श्रीमती **ललिताबाई** अंकलेश्वर निवासिनी-के आभारी हैं जिनकी प्रेरणासे परदेश भ्रमण करते हुए वचन रचनाएं पत्र द्वारा उनको भेजी गई थीं तथा इनका संग्रह करनेमें श्रीमती मगनबाईजीने जो उत्साह दिखाया है वह उनके अध्यात्म प्रेमके कारण अति सराहने योग्य है।

शुद्ध निश्चय नयका विषय आत्माको शुद्ध ज्ञानानंद शक्ति.

धारी अनुभव कराना है इसी लिये इस भजनावलीमें उसीकी मुख्यता है। जो सुख शांतिके इच्छक होगे उनको ये भजनावली अवश्य कुछ निमित्त कारण होगी ऐसी हमारी विचार-कल्पना है।

इस रचनामे जो दोष हों उनको विद्वान जैन कवि शुद्ध करके यदि हमे सूचित करेंगे तो हम उनके आभारी होंगे। हमारे भ्रमणके कारण हम इसका अंतिम प्रूफ नहीं देख सके इससे बहुतसी अशुद्धियां रह गई है उनका शुद्धिपत्र दिया गया है। प्रार्थना है कि पाठकगण पहले पुस्तक शुद्ध कर लें फिर पढ़ें।

इस पुस्तकके प्रकाश होनेमें नीचे लिखे धर्मात्माओंने द्रव्यकी मदद दी है इस लिये वे समाज द्वारा धन्यवादके पात्र हैं–

१००) **रायबहादुर द्वारकाप्रसादजी** साहब, लेट इंजीनियर, निहटौर (बिजनौर)

१००) **लाला विशेशरनाथ मूलचंद** जैनी अग्रवाल टिम्बर मर्चेन्ट (कानपुर)

काशी
स्याद्वाद महाविद्यालय।
ताः ६–७–१९१९
मिती आषाढ सुदी ९
वी० स० २४४५

सर्व प्राणियोंका हितैषी–
शीतलप्रसाद ब्रह्मचारी,
आ. सम्पादक, **जैनमित्र**–सूरत।

कृपा करके पहले पुस्तक शुद्ध करलें फिर पढ़ें। _

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	चंन्न	चले
,,	१८	ह्रदयं विठाओं	हृदय विठाओ
,,	१९	इस तनमें	तनमें
५	१७	समता उन्हीं पे	उन्होंने समता
,,	२०	बुरे बन्समें	बुरे बन्धनमें
६	५	मव इन्न	मन इय्योंकि
७	५	नहीं ममता हू	वहीं ममता हू
,,	२०	निद्रा	विद्या
८	१६	सुखोदधि	सुखदधि
,,	१८	आतप	आतार
,,	२१	आतम	आत्म
११	५	अंगीपथमे वाला	अनीपथमें, वाल
१२	१८	शिवतिया मनहर सम भगत	शिव तियाकी मन-हर मम मूरत
१५	३	यह०	०
१६	१०	अद्वित कुछ भी। हो	अविन। कुछ भी हो
१७	९	पर	पाम
१७	१०	भिखारी	भिखारी
१८	१६	हरियाल	हरियल
१९	१	लगाऊ	लगाऊंगा
,,	१९	मिटा लो	मिटाटो
२०	६	उसके	उसको
,,	१७	अन्तर या	अन्तर जा

२०	१७	अपना	आपना
२२	१०	मुलाता है	भुलाता है
२३	४	होना एकाकी सदा	एकाकी होना है
,,	१६	जानता	शान्तता
,,	१७	जान	गान
२४	६	भव मोक्ष	भाव मोक्ष
२५	१९	तो विन मेरे	तू विनशे ये
२८	२	चलो	चला
,,	१२	उसीको	उसीका
३०	१२	सङ्कल्प लय	कल्पना
,,	१६	माथना	भावना
,,	१८	ज्ञान	गान
३२	१५	है	हैं
,,	१६	उसे थी	उसे पी
३५	१५	याया	याया
३६	४	कर इसीकी	इसीकी
,,	६	भरम हरके भरम	भरम हरके मरम
३७	२०	सुत	श्रुत
३८	२०	तो सुखोदधि	सुखोदधि
४०	२१	चेतन	चैतन्य
४२	१	भेरे	मेरे
४४	१२	वीज	वीच
,,	१६	चिद्रुपी	चिद्रूपी
४५	२	घुमे	घूमे
,,	१५	वही अपना	वहीं अपना
,,	१९	हवाना	हटवाना
४७	१६	स्वाभावों	स्वभावों
४८	१०	जसे	उसे

४९	१८	परणित	परणति
,,	१७	मुलाया	भुलाया
५१	१	लख	उसे लख
,,	८	शिव महलसेंजा पहुंचे	पहुंचलो शिवमहलमें तुम
,,	१७	दूंगा	दूंगा
५२	१८	सम्हालो	सम्हलाओ
५५	२	ताकी	ताको
५६	६	चद्दरों	चद्दरों
,,	७	आपी, मव	आपी, नहीं भव
,,	१३	रोगी	रानी
५७	१	जोहै	जोहै
,,	१०	आपको	आप क्यों
,,	१३	मेरे द्वेषों	मेरे दोषों
५८	१४	भुजंगी छंद	गजल
५९	१२	देखो पट धाको	देखो अब पट धाको
६१	१५	कोई वनमें	०
६१	१६	जिधर नहीं	जिधर आता नहीं
६२	११	सौच है	सौच
,,	१३	वही साचा	यह साचा
६४	१२	क्यों	कियो
६५	२१	शुभके परदे	शुभ भावोंके परदे
६८	२०	नाहीं यह टेक ॥	नाहीं यह टेक
,,	२	धर तन	धरत न
६९	१३	शिवहर	शिवकर
७०	१	दिया	दीया
,,	२	क्षेण	क्षण
,,	९	पहले	पहल के
,,	२२	सुख	दुख

७१	२०	न जावे	न जाल
७२	४	क्रम	करम
,,	८	हैं न वर्त्ता	हैं वर्त्ता
,,	१४	कर्म फ़दे	कर्म फद
,,	१७	इसी आदतको अव	इस आदतको अपनी
७३	२	पृथक् गुण को	पृथक् ज्ञान गुणको
७३	७	किये थे	कीये थे
७७	३	सुखोदधि	सुखोदधिमें
,,	१४	मह्ा या	मह्काया
७८	२०	मोह यर्यी	मोहमयी
८१	२१	सुख निधि	सुख निधि
८२	१४	स्वय मिद्धि	स्वय सिद्ध
८४	४	दुष्ट	इष्ट
८९	२१	स्वाभाव	स्वभाव
९०	६	जो चढावाके द्वारन	जो वाके द्वारन चढ़ा
,,	१४	शिख रूप	शिवरूप
९१	५	तिन्ह	तिन्हें
९७	१५	टक्कर	टक्करें
,,	१७	समक	सम्यक
१००	३	भोह	मोह
१०१	३	सुखदाय	दुखदाय
१०२	८	निजनय	निजमय
१०३	७	तजन	तजत
,,	९	सीच	सींच
१०४	१	सु थस्त	अस्त
,,	७	नहिं	नाहिं
,,	१८	भपने	आपने
,,	१९	व टाम	वा ठाम

१०६	२०	जिनका	जिनका सही
१०८	१८	वर्तै	वर्तै
१०९	७	क्रोध	क्रोध
,,	१२	ज्ञान कलां	ज्ञान कला
,,	१५	थि।	थिस
११०	२	मनलगा	मन लागा
,,	१३	परदष्टि	परकी
,,	२३	अनुपम कहिं	अनुपम है कहिं
१११	११	थगन	मगन
११२	१३	जय	जाय
,,	२१	आपो	आपी
११३	२	तुवाए	तुलवाए
११८	१७	हवा	हवां
१२०	४	पद पद	पेर पद
१२३	१६	लिखो	लिखे
११७	११	भव पपीहा	भव्य पपीहा
१३७	७	अक्षत	अक्षन
१३९	५	फल क्षय लहुं	फल लहुं
१४०	७	एक दिश	एक एक दिश
१४२	७	सुप्रम	सुप्रेम
,,	१६	अल	मल
१४४	९	झलकावेगा	झलकावेगा। टेक॥ सर्वदुखोंसे रहित अवस्था पूरण ज्ञानानंद मई।
१४५	१९	परणतिकी	परजति
१४९	१३	चाहिये	चहिये
,,	१४	,,	

,,	१५	पर वहने	वहने पर
,,	१६	पद मास	षट मास
,,	१८	रहेती है	रहती
,,	२२	आगे	आठो
,,	,,	महल	महलोंमें
१५१	२	पर पुरुप	परम पुरुष
,,	८	देकर	देखकर
१५२	९	कापट	कपाट

बारह-भावना ।

१-अनित्य भावना।

है नित्य न कोई वस्तु जान संसारी ।
याके भ्रममें नित फंसे रहें व्यवहारी ॥
तन, धन, कुटुम्ब, ग्रह, क्षेत्र, क्षणिकमें विनसे ।
भावो अनित्य यह भाव आत्म चित्त परसे ॥ १ ॥

२-अशरण भावना।

कोई न शरण त्रैलोक्य माहिं तुम जानो ।
नर नारक देव तिर्यंन काल गत मानो ॥
रे आतम ! शरणा ग्रहो पवित्रातमकी ।
निर्भय पद लहके तजो फिरन गत गत की ॥ २ ॥

३-संसार भावना।

चउगति दुखकारी जीव सुख नहिं पावें ।
गयो काल अनन्ता वीत छोर नहिं आवे ॥
जिनवरके धर्म विन ग्रहे सुमन न लखावें ।
सुख समुद्र है जिन धर्म भव्य नित न्हावें ॥ ३ ॥

४-एकत्व भावना।

इकले ही जन्मे, मरे, कर्म फल भोगे ।
इकलो रोवे दु:ख लहै पापके जोगे ॥
जब मरे छोड सब साथ एकलो जावे ।
एकाकी आतम सत्य सुधी मन ध्यावे ॥ ४ ॥

५–अन्यत्व भावना ।

हैं स्वारथके सब सगे पुत्र, तिय, जननी ।
बिन टके न पूछे कोय नार, मित, सजनी ॥
है अन्य अन्य सब जीव अणु पुद्गलका ।
पर मोह छोड़ ले ले तू आसरा निजका ॥ ५ ॥

६–अशुचित्व भावना ।

है देह अपावन जगको अपावन करती ।
मलसे बनकर नव द्वारोंसे मल श्रवती ॥
जिन कीनी यासे प्रीति ठगे जाते हैं ।
जिन जाना पावन आप मुक्ति पाते हैं ॥ ६ ॥

७–आश्रव भावना ।

मन वचन कायका हलन चलन दुखकारी ।
कर्माश्रव होवे बने पींजरा भारी ॥
कोई पाप ढेर, कोई पुण्य ढेर जोडे है ।
करे दोनों जो चकचूर स्वफल तोड़े है ॥ ७ ॥

८–संवर भावना ।

संवर सुवीरने संयम शस्त्र उठाया ।
आश्रव चोरोंका ग्रह प्रवेश रुकवाया ॥
समिति गुप्ति दश धर्मके ताले लगाये ।
संतोपसे घरमें बैठ सु आनंद पाये ॥ ८ ॥

९–निर्जरा भावना ।

ग्रह देख कर्म मल ढेर भयंकर भारी ।
ध्यानाग्नि मूल एकादश तप हितकारी ॥

तू मेल्हके ध्यान समाधि अग्नि प्रगटावे ।
धग धगसे चले सब कर्म निर्जरा पावे ॥ ९ ॥

१०–लोक भावना ।

है पुरुषाकार अकृत्रिम लोक अनादी ।
षट द्रव्य दिखावें रूप करें बरबादी ॥
चित, रज, नभ, धर्म, अधर्म, काल आबादी ।
तू सिद्ध लोकको खोज रहित दुख व्याधी ॥१०॥

११–बोधि दुर्लभ भावना ।

चउ असी लाख कोठोंमें फिर फिर आया ।
पर रत्नत्रयका पता कहीं नहिं पाया ॥
अति दुर्लभ है निज हृदय बरमका खुलना ।
सम्यक्त तालिसे खुले बोधि त्रय मिलना ॥११॥

१२–धर्म भावना ।

है धर्म आपका रूप उसे नहिं जोवें ।
पर रूपोंमें निज धर्म जान सुख खोवें ॥
दश धर्म दो संजम तीन रत्न हैं तारक ।
भावो भावो निज धर्म आतमउद्धारक ॥१२॥

\+ \+

बारह भावोंको भावो नित्य ससारी ।
ज्यों रात मिथ्यातम मिटे प्रभा हो जारी ॥
आतम सूरजका भेद ज्ञान उजाला ।
जिसके प्रगटेतें पीवे अमृत प्याला ॥१३॥
ज्यों ज्यों स्व–तृप्तता बढ़े विषय सुख भूले ।
चारित्र नाग तिस घटके द्वारपर झूले ॥

चढ़ चलें सुगम पद धरे मोक्ष वस्तीको ।
पहुंचे शिव तियको मिले तजे हस्तीको ॥१४॥
यह छंद अगहन दो चौ त्रय छै मे गाये ।
वदि पन्द्रस परथम सांझ मगमें उपजाये ॥
मन बच तन शुद्धिकर जो नरनारी गावें ।
सुखदधिमें डूब सब चित्त विकार मिटावें ॥१५॥

राग.

जिन जिय ध्यान कराई, अरे मन ज्ञान बढाई ।
शब्द ब्रह्ममें भाव ब्रह्म है, विरला ताहि लखाई ॥ अरे० ॥ १
अलख अगोचर निजमय स्वामी, परदे वास कराई ॥ अरे० ॥ २
परदा दूर करो हिय शुचिकर, ज्ञान भानु दरसाई ॥ अरे० ॥ ३
मोह ध्वान्त है भारी व्यथा, तामें रमो मत भाई ॥ अरे० ॥ ४
सुखनिधि देख देख शुचिता धर, सत समागम जाई ॥अरे०॥ ५

गज़ल.

सुखासन बैठकर ऐ मन ! प्रभु अपना मिलाओ तुम ।
जो ज्ञानी वीतरागी है सुखी शिवरूप ध्यावो तुम ॥ टेक ॥
न जिसके रूपको देखे, नजर पर—रूपमें भटके ।
उसी में दृष्टि सच्ची धर, जगत निरखन भुलावो तुम ॥ जो० ॥
न हैंगे राग बदरंगी, न कर्मोंके यहा झगडे ।
फटिक मणिकी जो मूरत है, उसे हृदयमे बिठाओ तुम ॥ जो० ॥
वही है लोकमें व्यापी, वही इस तनमें सदा रमता ।
नहीं परसे करो मतलब, निजारथ सत्य भावो तुम ॥ जो० ॥
पदारथ चित अचित जगके, नहीं आतमको खींचे है ।

जो आपी इनमें जाता है, उसे निज घर रमाओ तुम ॥ जो० ॥
है सुखसागर रतनत्रय मय, सुधामय शांत जल सुन्दर ।
उसे पीकर तृपत होकर, तृषा भवकी मिटावो तुम ॥ जो० ॥

पद.

चेतन जी तुम चेतत क्यों नहिं, टगमगात दधि नाव तुम्हारी ॥ टेक ॥ कर्म बंधको भार चढ़ायो आश्रव नीर नित्य है, जारी ॥ चे० १ ॥ मोह मद्य पी मत्त भयो है, भूल गयो अपनी सुध सारी ॥ चे० २ ॥ मन नौका चढ़ विषय चोर शठ, लूटत है तेरी निधि भारी ॥ चे० ३ ॥ चारों गति चौ गर्त्त चड़े हैं, फिरत जात निकसत मंझधारी ॥ चे० ४ ॥ यान धर्म चढ़ श्री गुरु गुजरे, समझावत याकूं हर बारी ॥ चे० ५ ॥
जरा देख पग मग नौका धर, नहिं डूबे निगोद भयकारी ॥चे०६॥
सम्यग्दर्शन रस्सा अनुपम, गहिकर चढ़ नौका सुखकारी ॥चे०७॥
नहीं जल बंध, नहीं जल आश्रव, चलत जात सीधी शिवद्वारी॥चे०८॥
निज अनुभूति नारि सुहावनि, गावत अनुभव धुनि हितकारी॥चे०९॥
जो जो बैठे इस नौका चढ़, सुखोदधि कुन्ड गये तर बारी॥चे०१०॥

गज़ल.

रहो मज्जन अगर चेतन, तुम्हे निज लाज रखनी है ।
करे तुमसे जो उल्टापन, समता उन्हीं पे रखनी है ॥१॥टेक
ग्रहण कर मोह मदिराको, भुलाया निज सरलपन को ।
कुटिल कर भाव अपनेको, छिपाई निज परखनी है ॥२॥
यह पांचोंकि विषय काले, तुझे बन्धमें जो डाले ।
न कर तु द्वेष ऐ चेतन, प्रकृति इन जड़ उलझनी है ॥३॥

जो कसते हैं तेरे तनको, मसकते हैं तेरे तनको ।
प्रगट अज्ञान निचेंतन, नहीं निज भाव लखनी है ॥ ४ ॥
अगर सच बात तू पूछे, कहूंगा मैं निडर होकर ।
न कोई शत्रु है तेरा, प्रगट मति यह सुलझनी है ॥ ५ ॥
तू सम्यक् रूपको अपने अरु सब द्रव्य मथ निजमें ।
सुखोदधि नित वहे घटमें, वही परणति सटकनी है ॥६॥

गज़ल.

थकन भव बन भटकनेकी, मैं इस दम दूर कर दूंगा ।
मैं पहुंचा आत्म उपबनमे, जहां सुख शान्ति घर लूंगा ॥ १ ॥टेक॥
विषय तृष्णाकी जो गरमी, उसीने क्लेश दे रक्खा ।
परिग्रह पोट बोझेको, अलग कर हलका हो लूंगा ॥ २ ॥
सुभेद ज्ञान रत्नत्रयसे, धारा निज सुधा बहती ।
उसीमें कर निमज्जन अब, सभी संताप हर लूंगा ॥ ३ ॥
परम निश्चय धरमके हैं, मनोहर वृक्ष दस जाती ।
उन्हींकी शांत छायामें, मैं सुखसे नीद अब लूंगा ॥ ४ ॥
यह अमृतमय परम सुन्दर, सुधामय फल लटकते है ।
इन्हें खा करके तृप्ति पा, सुखोदधिमे रमन लूंगा ॥ ५ ॥

गज़ल.

मेरा आसन मेरा मन है, उसे निर्मल किया रुचिसे ।
उसी पर बैठ सुख सेती, लिया निज दर्श है रुचिसे ॥ टेक ॥
अनादि जग सगा माना, मगर छुटता गया सब ही ।
न छुटनेका कोई दिन जो, उसे समझा है शुचि रुचिसे ॥ १ ॥
दर्श चारित्र अरु ज्ञान, यही सच्चे मेरे मित्तर ।

इन्हींसे करके अब प्रीती, बना सेवक हूं मैं रुचिसे ॥ २ ॥
मैं हूं सर्वज्ञ सुख रूपी, मैं हूं कृत कृत्य अनरूपी।
रखा सामान्य तो ज्ञायक, बना हूं नित्य मैं रुचिसे ॥ ३ ॥
सभीको आपसा जाना, सभीको शुद्ध पहचाना।
मिलाकर सब सुखोदधि कर, वहीं रमता हूं मैं रुचिसे ॥ ४ ॥

गज़ल.

चखो नित ज्ञान अमृतको, जो सब दुःख दूर करता है।
परम कल्याणका भाजन, वहीं आनन्द करता है ॥ टेक ॥
मरम भव दुख भरनमें बहु, उठाए खेद दुखदाई।
सरम करता सुखासन पर, वहीं आराम करता है ॥ १ ॥
करमके फंदमें पड़कर, करे जो भाव पर रूपी।
इन्हींसे बांध कर्मोंको, भवोंके दुःख भरता है ॥ २ ॥
लखो निज रूप सद् ज्ञानी, जहां बहता सुखद पानी।
उसीमें दृष्टि धर अपनी, जगतकी देख करता है ॥ ३ ॥
सफल कर जन्मको अपने, जो तू चाहे है सुख आतम।
सुखोदधिमें रमन करना, सभी जंजाल हरता है ॥ ४ ॥

गज़ल.

करो भक्ति सुआतमकी, जहां निर्वाण गुण होता।
परम कल्याणमय मूरतसे, दर्शन नित्य शुभ होता ॥ टेक ॥
वही संसार तारण है, वही भव दुःख निवारण है।
वही गुण सार कारण है, कि जिससे सर्म नित होता ॥ १ ॥
करम गिरि चूर करनेको, वही है वज्रसम निटा।
वह सूक्षम है उसीसे ही, हृदय मंदिर सफल होता ॥ २ ॥

वह दीपक एक अनुपम है, न बुझता है न गलता है ।
उसीको धार घट अंदर, सहज निर्णय सकल होता ॥ ३ ॥
वह नौका सार सुखदाई, उसी पर चढ़के चल दीजे ।
भवोदधि तट पहुंचते ही, सुखोदधिमें गमन होता ॥ ४ ॥

गज़ल.

स्वसंवेदन सुज्ञानी जो, वही आनद पाता है ।
न परका आसरा करता, सदानिज रूप ध्याता है ॥ टेक ॥
न विषयोंकी कोई चिन्ता, उसे वेज़ार करती है ।
लखा विष रूप है जिसको, वह क्यों कर याद आता है ॥१॥
कषायोंकी जो लहरें हैं, न जिसके जलको लहरातीं ।
जो निश्चल मेरु सदृश है, पवनघन नहि हिलाता है ॥ २ ॥
जो चिन्ता है वही दुःख है, जो इच्छा है वही दुःख है ।
है जिसने अपनी निधि देखी, नहीं फिकरोंमें जाता है ॥३॥
है तनसे गरचे व्यवहारी, मगर मनसे रहे निश्चल ।
वही सत ध्यानका कण है, जो कर्मोंको जलाता है ॥ ४ ॥
सुधाकी बूंद ले ले कर, वह एक सागर बनाता है ।
उसीका नाम सुखोदधि है, उसीमें डूब जाता है ॥५॥ न.

गज़ल.

समता नदीमें सार सुधा जलको पाएंगे ।
आतप भव मिटाके परम शांत थाएंगे ॥ टेक ॥
कर्मोंकी गरम आगने विह्वल मुझे किया ।
तन मन सुखा दिया, इसे अब तर बनाएंगे ॥ १ ॥ आ.
तृष्णा विषयने आतमको वेज़ार कर दिया ।

वैरागके छींटोंसे उसे हम मिटाएंगे ॥ २ ॥ आ.
है भावकर्ममलने, कलंकित बना दिया।
साबुन सुज्ञान ले उसे मल मल छुड़ाएंगे ॥ ३ ॥ आ.
पर द्रव्यके कुमोहने, आपा भुला दिया।
निश्चय अब हम कुमित्रकी, संगति हटाएंगे ॥ ४ ॥ आ.
भव वनके भटकनेसे, है रुकना बहुत अच्छा।
सुखोदधिमें मगन होके, व्यथा सब जलाएंगे ॥ ५ ॥ आ.

गज़ल.

अर्थकी सिद्धि करनेको, परम अनुभव बुला लीजे।
जरा तो बैठ कोनेमें, निजातमकी खबर लीजे ॥ टेक ॥
जिसे बहु संत पुरुषोंने, गलेसे नित लगाया है।
उसीसे बात कर थोडी, सुसमरस पा सरम लीजे ॥ १ ॥ ज.
शुक्ल है मूरती उसकी, सुगंध संयमकी आती है।
महो हो वास अनुपममें, नशा तन पर चढ़ा लीजे ॥ २ ॥ ज.
जगतके लोग गर तुझको, कहैं दीवाना तथा खफती।
तो उन सबको निरख पागल, प्रयोजन निज बना लीजे ॥३॥ ज.
ये जिनके साथमें तूने, बहुत विपता उठाई है।
किनारा कम तू उन सबसे, परम रुचिकी शरण लीजे ॥४॥ ज.
इसी अभ्यासमें जिसने, बिताई है घडी पल क्षण।
उस सुखोदधिके मारगमें ही, चलकर निज नगर लीजे ॥५॥ ज.

गज़ल.

समझ उलटी हुई मेरी, इसे गर कोई सुलटाता।
वह आनन्द धाम को पाता, वह निश्चय सिद्ध हो जाता ॥ टेक

नहीं है धैर्य कुछ चितमें, न है कोई ज्ञानकी ज्योति ।
निपट अज्ञान घेरे है, इसे गर कोई छुड़वाता ॥ वह० ॥
सदा संकल्प की लहरें ही, उठ उठ कर सताती हैं ।
मेरे चिनमय समंदरको, अक्षोभित कोई करवाता ॥ वह० ॥
है जग एक शुद्ध उपयोगी, जिसे रटते हैं नित योगी ।
उसीकी गर कृपा होवे, तो सब कारज है बन जाता ॥ वह० ॥
है कारण जो उपादान, वही कारजको सारे हैं ।
उसीकी जो शरण लेता, सभी झगड़ा निकल जाता ॥ वह० ॥
परम कल्याणमय मूरत के दर्शन नित्य ही पाकर ।
सुखोदधिमें रमण करता, चमन शिवका है खिल जाता ॥ वह० ॥

लावनी.

भूषण देश और कुलके तो तुम, चरण कमल वंदन करलो ।
भवदधि तारण सेत इसी पर, चढ़के भवसागर तरलो ॥टेक॥

चरण कमलके गुणका वर्णन, करे कौन जग मतवाला ।
जिन चरणोंको रामचन्द्र सीता लक्ष्मणने लख डाला ॥
तृपत किया मन भौंरा अपना, गुणानंद पाया आला ।
अष्ट दरवसे पूजन करके, लिया पुण्य अतिशय वाला ॥
अष्ट दरव सुन्दर ले ले कर, तुम भी अब पूजन सजलो ॥
भवदधि० ॥ १ ॥

बड़ा बड़ा उपसर्ग इन्हीं चरणोंने तब सह डाला है ।
निश्चल रहकर ध्यान पिंजरेमें आतम पाला है ॥
ज्ञान और वैराग्य क्षेत्रपालोंको बिचमें डाला है ॥

परम निरंजन शुद्ध ज्योतिका किया वहां उजियाला है।
ऐसे पगको बार बार भवि तुम चितमें सुमरण करलो॥
भवदधि० ॥ २ ॥

इन चरणोंने थिर रह करके शुक्ल ध्यान जगाया है।
श्रेणी पथमें डाला आतमको, उच्च चढाया है॥
किया मोहका नाश कि जिसने सब जगको बौराया है।
फिर त्रय घाती नष्ट कर, केवल ज्ञान उपाया है।
अपने सरको इन चरणो पर धरके तुम पावन करलो॥
भवदधि० ॥ ३ ॥

इन चरणन ने विहार करके बहुतनका उपकार किया।
प्रीतिसे देखा जिन जीवोंने उन्हींको सम्यक् दान दिया।
फिर एकाकी होके निश्चल, चौ अघातिया नाश किया।
शिवघरमें आतमको भेज, जो साध्य था उसको साध लिया॥
सुखोदधि चरणसुधा जल पूरण निज घटमें ये जल भर लो
भवदधि० ॥

गज़ल.

भ्रम वनमें जो भ्रमते हैं, सदा भ्रम त्रास पाते हैं।
न मनको कर प्रफुल्लित वह, कभी समता धराते हैं॥ टेक॥
अनाहक पापकी गठरी को सिर पर रख खुशी होते।
उधर आतम बंधाते हैं, इधर खुशिया मनाते हैं॥ न० ॥
जो है खुश बाग खुशरंगी, न पाते रंग है उसका।
वृथा फंस राग द्वेषोंमें, निज आतमको रंगाते हैं॥ न० ॥
जो कहता कोई ऐ भोले! इधर आ तू, इधर तुझ घर।

पिये हैं मोहकी मदिरा, न कुछ सुनते सुनाते हैं ॥ न० ॥
करमके भोगको भोगे, हुए निशदिन गमा योंही ।
न ज्ञानामृतको पाते हैं, न सुखोदधि पास आते हैं ॥ न० ॥

गज़ल

तेरे चर्ण अम्बुज बसाए हुए हैं ।
उसीमें भ्रमर लौको लाए हुए हैं ॥ टेक ॥
सभी पुष्प घूमे न सुख पुष्प पाया ।
विषय पुष्प योंही रिझाए हुए हैं ॥ उसी० ॥
कषायोंकी अग्निसे वच करके आया ।
सुधा शांतदा धाम पाए हुए हैं ॥ उसी० ॥
मगन होके लिपटा न निज रसको छोड़े ।
स्वाभाविक इम मनको दबाए हुए है ॥ उसी० ॥

पद.

मैं तो चेतन नगरिया जाऊंगा ॥ मैं तो चेतन० ॥
भेद मिटाके खेद हटाके, निश्चल मन प्रभु ध्याऊंगा ॥ मैं० ॥
दुःख पावत हूं कोई न सुनत है, वाको व्यथा सुनाऊंगा ॥ मैं० ॥
मोह नगरमें भूल पड़ा हूं, यासे पग निकलाऊंगा ॥ मैं० ॥
राग द्वेष सर्पन मोहि काव्यो, विषकी लहर मिटाऊंगा ॥ मैं० ॥
परम भावना मंत्र अनूपम, वाको भज सुख पाऊंगा ॥ मैं० ॥
शिवतिया मनहर सम मूरत, देखके मन बहलाऊंगा ॥ मैं० ॥
आतम बाग महागुण पूरित, तामें सैर कराऊंगा ॥ मैं० ॥
शांता मृत जल पी बलकारक, भव आताप शमाऊंगा ॥ मैं० ॥
दर्शन ज्ञान चरण अनुभवका, तन सुख भोजन पाऊंगा ॥ मैं० ॥

निर्मल ज्ञान परम सज्जापर, लेट लेट हरखाऊंगा ॥ मैं० ॥
निज परिणति करवट ले लेकर, जडता तन हटवाऊंगा ॥ मैं० ॥
सुखोदधि मगन नींद सुन्दर ले, अद्भुत आनंद पाऊंगा ॥ मैं० ॥

होली.

मेघाडम्बर छायो, नाथ निज रूप छिपायो ॥ टेक ॥
प्रगट तदपि है, ज्योति निराली जड सो चित उलझायो ॥
अब भरममें मान आपको, चेतन जड ठहरायो ।
आप आपी विसरायो । मेघा० ॥ १ ॥
भेद विज्ञान जगे, जब घटमें जडको भिन्न लखायो,
निज प्रकाश जिस घरते आवत, ताही मगको धायो ।
रुचि अनुपम प्रगटायो । मेघा० ॥ २ ॥
सम्यग्दृष्टि थिर जब कीनी कर्म तिमिर नहिं आयो,
बिन सहाय पूरब नम बिघऱ्या, छिन २ दूर पलायो ।
तेज आतम सु सुहायो । मेघा० ॥ ३ ॥
तीन लोकमें जितने भ्राता, उनको रूप मनायो ।
समता सागर सुन्दर देखा, तामें आप डुबायो,
चिदानन्द सागर पायो मेघा० ॥ ३ ॥

गज़ल.

चेतन अब लीजे सुमति देवीको निज चितबनके बीच ।
क्यों पडे हो तुम कुमति कुलटाके भव नालोंके बीच ॥टेक॥
दु ख दर्दों, रंज ग़म करते बिताई मुद्दतों ।
चैन कुछ पाया नहीं पड पंच सुख चोरनके बीच ॥ क्यों० ॥

तू है स्वामी ज्ञानमय मरता न जलता है कभी ।
जान लो है जड़ अलग रंगना न जड़ रंगतके वीच ॥क्यों०॥
चहुं गतिमें वहु फिराकर कर दिया तुझको खराव ।
ऐसी संगत तजके तू निज डाल गुणवीरोंके वीच ॥क्यों०॥
जिसकी भक्तिसे अनंतोंने लही शिवकी डगर ।
तज कुपथको पग फंसा शिवभक्ति जंजीरोंके वीच ॥क्यों०॥
मोह शत्रु दिन वदिन करता है दीवाना तुझे ।
ज्ञान धनुग्रह मोहको रख ध्यान तीरोंके वीच ॥ क्यों०॥
क्षार कर दीजे सभीको जो विघ्न करते हैं तुझे ।
सुखोदधिका रस निराला पीले निज अनुभवके वीच ॥क्यों०॥

पद.

मैंने जाना तेरा रूप ।
तू अकलंकी विद्याभूषण ज्ञाता तिहुं जग भूप ॥
गुण पर्ययमय क्षणक्षण विनशे, तोभी नित्य स्वरूप ॥मैं०॥
इन्द्रिय रहित अतिन्द्रिय सुख धर संतन शरण अनूप ॥ मैं०॥
अव्यावाध सकल दरशी तू, अनुभव अमृतकूप ॥ मैं० ॥
व्यापक शून्य सत्य अव्यापक, निर्गुण सगुण अनूप ॥ मैं० ॥
तिहुं जग वलधारी अविकारी, करत न कार्य विरूप ॥ मैं० ॥
जो जन नित प्रति नाम जपत तो, चूरत दुखमय तूप ॥ मैं० ॥
आप आपको आपसु देवल, पूजा करत त्रिरूप ॥ मैं० ॥
सुखोदधि मगन होय जो जाने, माने तोहि चिद्रूप ॥ मैं० ॥

गज़ल.

जगत जंजालमें फंसना नहीं अच्छा नहीं अच्छा ।
यह दुःखदाई है प्रति क्षणमें, इसे तजना सदा अच्छा ॥ टेक ॥

न करना नेह अरु द्वेष, सभी रहना सदा अच्छा ।
मिटा कर आपको दुनियामें, गुम रहना सदा अच्छा ॥पद०॥
मगर चेतनके पुंजोंमें, प्रगट रहना सदा अच्छा ॥ पद० ॥
अमर हो ज्ञान साधन कर, निकल रहना सदा अच्छा ॥पद०॥
परम समता सुधासागर, जहां बहता है रंगतसे ।
उसीमें डाल कर निजको, रंगे रहना सदा अच्छा ॥ पद ॥

होली.

जगमें चेतन प्राणी, खूब निज शक्ति बढ़ाई ॥ टेक ॥
ज्ञाता दृष्टा तू अविनाशी, ज्ञान प्रकृति सगताई ।
परम निरंजन अद्भुत आनंद, देख देख हुलसाई ।
शिवतिय सन्मुख धाई ॥ जग० ॥
करम भरमसे दूर हुआ है, जाना पद् सगुदाई ।
राग द्वेष दो कर्म मिटाये, वीतरागता छाई ।
संयमकी अग्नि जलाई ॥ जग० ॥
भेद ज्ञान समाधि अनूपम तिष्ठ तिष्ठ सुखदाई ।
सुखसागर अनुभव रस पाकर, पद् रस प्रीति बुझाई ।
वरी शिव नारि सुहाई ॥ जग० ॥

पद.

करलो वस्तु विचार मेरे चेतन तुम अब ।
छोडो रंजों अलम, दुःखो फिक्रोंको सब ॥ करलो. ॥
हैगा उपजन विनशना तो सिद्धोंके संग ।
जग जाता अरु आता न मिटता यह ढब ॥ करलो. ॥
कोई कोईका न होता, न लेता दुख सुख ।

एकी सुर नर नरक पशु तन पाता है जब ॥ करलो. ॥
जान ज्ञानी मुनी, अनुभव ध्यानी गुनी।
अपने आपी समागमको पाता है तब ॥ करलो. ॥
तीन लोक मेरा ठ, सभी जीव मेरे हैं।
सुख सागरमें सिद्धोंको पाता है अब ॥ करलो. ॥

गज़ल.

दिलमे कुमतिको अपने बिठाना नहीं अच्छा।
भवभवके दुख क्लेश उठाना नहीं अच्छा ॥ टेक ॥
डाला इसीने तुझको नरक अरु निगोदमें।
सुमतिको भूल भर्ममें पडना नहीं अच्छा ॥ भव० ॥
जो रत्न अनूपम तेरे उपयोगमें अंकित कुछ भी।
हो इसे दिलसे भुलाना नहीं अच्छा ॥ भव० ॥
जो सुख है पराधीन क्षणिक और विकल्पी।
उसमें लुभा वियोगको पाना नहीं अच्छा ॥ भव० ॥
सुखोदधिमे स्व आधीन निजानद भरा है।
तजके इसे भव खार नहाना नहीं अच्छा ॥ भव० ॥

पद.

परम पद हृदय मनाओ, आतम ज्ञान बढ़ाओ ॥ टेक ॥
जिस बिन जाने चिरके रोगी क्लेश उठाय भए हैं सोगी।
ताहि परख जो आपी जैसा, भरमण भूल मिटाओ ॥परम०॥
मति श्रुत अवधि और मन पर्यय, इनसे नहिं सुख पावो,
एक निराला केवल अपना, लख लख आनंद पाओ ॥परम०॥
जो है अरूपी अमर अनूपी, गुण अनंत भण्डारी,
सुखोदधि ताहि जान रुचि सेवी, डूब डूब हरखाओ ॥परम०॥

वहीं ज्ञान रुचिता जमाई हुई है ॥ टेक ॥
जहां मैलपन हो वहां हो न खुश रंग ।
सफेदीमें रंगत रंगाई हुई है ॥ वहीं० ॥
मलो तनको कितना न होता यह शुचि है
करम पंक जावे मलाई हुई है ॥ वहीं० ॥
जो तपते हैं तपको वे पाते हैं शुचिता ।
उन्हीं को परम लब्धि आई हुई है ॥ वहीं० ॥
करो अपना दर्पण इसी भांति निर्मल ।
त्रिलोकीकी रंगत दिखाई हुई है ॥ वहीं० ॥
जहां भेद विज्ञान साबुन हो उत्तम ।
वहीं आत्म चित्की सफाई हुई है ॥ वहीं० ॥
लखो सुखोदधिको जहां नित्य मंगल ।
परम सुखमें बुद्धि लगाई हुई है ॥ वहीं० ॥

गज़ल.

परम कल्याण भाजन है जिसे चितसे मनाऊंगा ॥
मैं उत्तम दान कर करके, विकल्पोंको भगाऊंगा ॥ टेक ॥
जिन्हे मैंने भुलाया है, उन्हे दिलमें बिठाऊंगा ॥ मैं० ॥
करूं मैं लोभका तजना, जभी व्यवहार मग चालूं ।
मैं चारों संघ लख करके, सुदानोंको दिलाऊंगा ॥ मैं० ॥
जो अनुभव आपका रस है । उसे देना न वाजिब है ।
मगर मित्रोंको दे करके, मैं नित आनंद मनाऊंगा ॥ मैं० ॥
मेरा सुखोदधि मेरे अंदर, न मैं देऊं किसीको वह ।
उसीमें नित मगन होकर, परम सुख धाम पाऊंगा ॥ मैं० ॥

तन धन यौवन सब अथिर तू इनमें राचा ।
होकर समदृष्टी रूप रहा तू काचा ॥ भ० ॥
संसार सार गर तूने कुछ भी जाना है ।
तो सार आप सुख रूप नहीं मना है ॥ भव० ॥
अब वृथा फिरनमें नहिं शिव आनंद पावो ।
परमारथ सुखसागरमें डूब रत थाओ ॥ भ० ॥

गज़ल.

परम कल्याण भाजन में मैं अमृत स्वाद पाऊंगा ।
मिटाकर आधि अरु व्याधि, मैं आनंद हिय मनाऊंग ॥ टेक ॥
जगत जंजालको तजकर, मुझे रहना है निर्द्वन्द्वो ।
मैं संकट अग्निको समजलसे अब खूबी बुझाऊंगा ॥ मि० ॥
मुझे जिनराजके सुन्दर महलमें जानेकी रुचि है ।
वहीं निज रंगमें रंगकर, मै बहुरंगी हटाऊंगा ॥ मि० ॥
परम सुखकार सुखभाजन, है परमातम मेरे अंदर ।
उसे लखकर मगन होकर, मैं सुखसागर नहाऊंगा ॥ मि० ॥

गज़ल.

मैं निज घट दधिसे जल सुन्दर, मंगाकर निज न्हलाऊंगा ।
बिठाकर आपको हृदि थाल परम, सुखको ललाऊंगा ॥ टेक ॥
मैं जिसकी यादमें बहुकाल, अपना खो चुका योंही ।
उसे अपनी सुगोदीमें, बिठा करके रमाऊंगा ॥ बि० ॥
हुआ अब तो उदय सूरज, मिटा अज्ञान तम सारा ।
जो शुद्धिका सुमारग है, उसे लख पद धराऊंगा ॥ बि० ॥
मेरा हैगा किला दुर्गम, जहां सत् रूप सुख रहते ।

उसीमें जाकं मैं निज नारि, जिससे दिल लगाऊंगा ॥ चि० ॥
सुधारस पान कर आनंद, घर निज तृप्तिको पाकर ।
मैं सुखसागरमें तन्मय हो व्यथा मनकी मिटाऊंगा ॥ चि० ॥

गज़ल.

चित धर्म मर्म नर्ममें, सुगर्म निज करो ।
बाधा अपार संसृतिकी क्षणमें परिहरो ॥ टेक ॥
भव रोग दु खदाय इन्हें त्याग गर चरो ।
निज आत्मकी संगतिसे सुधा सार पय करो ॥ बा० ॥
शक्ति अपार तेरी छिपी, मोहके अंदर ।
शिव भक्ति मगन करके उयाड़ी उसे करो ॥ बा० ॥
जिनके तू बनके होके दिवाना स्व खो चुका ।
उनके संहार करनेका साहस विमल करो ॥ बा० ॥
वह सूर्य तेरे पास उसे कर प्रगट अभी ।
सुखोदधि मई किरणोंसे निजातम सुपट करो ॥ बा० ॥

पद.

भेद ज्ञान, कमान उठालो सजन ।
अनुभव तीरको उसमें लगाओ मगन ॥ भेद० ॥
रागद्वेष दो वैरी मिटालो सजन ।
संजम मित्रसे प्रीति बढ़ालो सजन ॥ भेद० ॥
हैगा परदेमें तेरा प्रीतम छिपा ।
परदा काटो हटाओ मिटाओ सजन ॥ भेद० ॥
ज्ञाता दृष्टा अलख नित्य निर्भय अमल ।
वाकी दृष्टिमें दृष्टि मिलाओ सजन ॥ भेद० ॥

सच्ची प्रीति स्वभक्तिमें अंतर नहीं ।
सुख सागरमें तन मन डुबालो सजन ॥ भेद० ॥

शैर.

संयम असि पानले करम हत लेना है यच्छा ।
अपनेको विघ्न करता मिटाना उसे अच्छा ॥
है आत्मीक धन जो स्व संवित्तिमें छिपा ।
उसके निकाल भोग तृपत होना है अच्छा ॥
भव वास दुःख दाह रूप हैगा सदा कुल ।
इसको तो छोड़ वास सुशिव पाना है अच्छा ॥
यद्यपि यह जड है कर्म मगर मद्य सी आदत ।
रखके स्ववीर्य्य सार हटाना इसे अच्छा ॥
है सत्य निरंजन सही गुण धाम निराला
उसको लखा कि सुखोदधि पाना बहुत अच्छा ॥

पद.

निज दर्शन लो लाओ, रे मेरे जिया ॥ निज० ॥
पर देखत देखत न अघाए, अवतो तुम थम जाओ ॥ रे मेरे० ॥
शान्त दिवाकर उदय भयो घट, भवतम विघ्न नसाओ ॥रे मेरे०॥२
निश अज्ञान तृषातुर तू है, समरस जल पी जाओ ॥रे मेरे०॥३
या प्रकाशमें जग सब दीखे। अन्तर या सुख पाओ ॥रे मेरे०॥४
शुद्ध सुघड़ व्यापार अपना, कर संतोष कमाओ ॥रे मेरे०॥५
अनुभूति, निज नारि मनोहर, ताको स्वतः रमाओ ॥रे मेरे०॥६
सुखसागरमें मगन होइगे, जब निज आतम पाओ ॥रे मेरे०॥७

गज़ल.

परम आनंद भाजन जो, उसे निज मन बिठाऊंगा ।
मैं कर कल्याण अब अपना, व्यथा भव भव मिटाऊंगा ॥टेक॥
नहीं है ताब कर्मोंकी, करें जो साधना मेरा ।
इन राग अरु द्वेषको ज्ञान शस्त्रसे दूर हटाऊंगा ॥ मैं० ॥
सकल विपताका जो कारण, कि जिसमें जीव हैं डूबे ।
उसी भव मोहके मुंहको मैं अब काला बनाऊंगा ॥ मैं० ॥
है मेरा ज्ञानरूपी जल, जो पर वस्तुमें फैला ।
उसे निज आत्म सरवरमें, खिंचा करके भराऊंगा ॥ मैं० ॥
निश्चल निर्भय परम, मूरतकी करके मानना दिलसे ।
मैं सुखसागरको निज आतम, प्रदेशोंमें धराऊंगा ॥ मैं० ॥

गज़ल.

परम सतज्ञान निज अंदर, उसे लखले उसे लखले ।
कुमारगकी हटा चिन्ता, परम अमृतका भोजन ले ॥
सताया है जिन कर्मोंने, उन्हींको इसने है बांधा ।
जिस बंधनसे मिले शत्रु, वह बंधन दिलसे तू तजले ॥कु०॥
हैंगी सब मूल भावोंकी इन्होंने सब भ्रमाया है ।
उन्हीकी संगतोंको तूं उलट कर रंग निज कसले ॥ कु० ॥
भरम अरु कर्म नो कर्म, न तुझमें वास करते हैं ।
निराला देख अपनेको, स्वगुण आसनमें निज रखले ॥ कु० ॥
तेरे घटमें सुखोदधि है, नहावे तू न क्यों उसमें ।
यहां अमृत सु अनुभवका, इसे निज पान तू करले ॥ कु० ॥

गज़ल.

निकल निर्भय निजातमको, सुमर ले ध्यान धर चेतन ।
भड़ा विषयोंमें क्यों दुखको सहा करता है ऐ चेतन ॥ टेक ॥
तू निज आनंदरस पीकर, तृपत होता नहीं एक क्षण ।
जो आकुलताका सागर है, न तरता उससे ओ चेतन ! ॥पड़०॥१
चतुर्गतिमें बहुत घूमा, न पाया अपना हित कोई ।
श्री जिनवरके कदमोंमें, लुभा जाऐ भ्रमर चेतन ॥ पड़० ॥ २
परम कल्याणकी मूरत, तेरे घटमें विराजे है ।
तू नित ले पूज उसको; करम ठग जो हरे चेतन ॥ पड़० ॥ ३
मगन आनंद सागरमें, रहे जो जानता निजको ।
भुलाता है सभी झंझट, जो सत ज्ञाता सही चेतन ॥ पड़० ॥ ४

गज़ल.

करम बंधनसे जो कोई, पृथक् निज आपको जाने ।
वह सत्यानन्द सत ज्ञानी, वही निज मोक्ष पहचाने ॥ टेक ॥
अनादि मोह तृष्णामें फंसा निज ढंग जाने ना ।
सु अमृत ज्ञान अनुभवका, वह पी पर फंदको माने ॥वह०॥
क्षुधा ऐसी लगे जियको कभी भी तृप्त नहिं होवे ।
जो मोदक शुद्ध भावोंका, निज अनुभव रसमें नित साने॥वह०॥
मुझे जो है सफर करना, नहीं मुशकिल नहीं मुशकिल ।
परम सम्यक्त साथीको, जो लेवे पर्म मग ठाने ॥ वह० ॥
सुखोदधिमें रमण करना, यही पुरुषार्थ है अपना ।
जो रत होता इसी रंगमें, सही परमातम निज माने ॥ वह० ॥

गजल.

परम कल्याण मारगमें, सदा रहना मुझे अच्छा ।
करम ठगने ठगा मुझको, उसे हरना मुझे अच्छा ॥ टेक ॥
बहुत आताप पाई है, बहुत दुविधा उठाई है ।
दुइका छोडके रस्ना, होना एकाकी सदा अच्छा ॥करम०॥
अजब संमोहने जगको, बहुत व्याकुल बनाया है ।
सुभेद ज्ञान अस्त्र ले, इसे हनना बहुत अच्छा ॥करम०॥
चरण श्रीनाथ जिनका तुम भजनकर हो रहो निश्चल ।
वही अमृत वही आनंद, उसे पीना सही अच्छा ॥करम०॥
मैं सुख सागरमें डूबूंगा, नहीं इस जगको देखूंगा ।
परम अनुभवमें चुप रहके, चुपी रहना बहुत अच्छा ॥करम०॥

गजल.

सजन समरूप रहकर नित, सुधारो आपका बाना ।
वही हितकर वही दमकर, वही करता है कल्याणा ॥ टेक ॥
उसीमें रचके नित रहना, उसीमें जीको कर देना ।
बना सुन्दर सुखी आसन, परम अनुभवका रस पाना ॥ व० ॥
यह अनुप्रेक्षा सुद्वादशका बना झूला परम अनुपम ।
उसीमें बैठके रमना, ऋतु सावनका रंग माना ॥ व० ॥
घटा काली जो कर्मोंकी, है झड़ता वर्म जल जिनसे ।
मैं पाता ज्ञानता सुखदा, जगत आताप बुझवाना ॥ व० ॥
निज अनुभूति तिया मनहर सुन्दर जान इसको नित ।
मैं सुखसागर न्हाता हूं जहां त्रय रत्न खजाना ॥ व० ॥

पद.

सिद्धनके परिणामोंमें नित, ज्ञान छटाको देखो भाई ।
संसारी जहं बंध करत हैं, हैं अबंध अनुपम जिनराई ॥ टेक ॥
राग द्वेष पुद्गलमय लखके, आपन रूप सुभिन्न कराई ।
हर्ष विषाद छाड समता भज रमता हो निजको अपनाई ॥ सि० ॥
भव भोगी भव त्यागी क्षणमें गति परिणामोंकी पल्टाई ।
भव मोक्ष है भाव भवावलि, भाव मोक्ष रख रख मम भाई ॥ सि० ॥
अनुभव अमृतरस कर पूरित, निज सरवर है नित सुखदाई ।
ताहि मान तू जान आप घर. देख सुखोदधिकी प्रभुताई ॥ सि० ॥

पद.

क्रोध अग्नि जियको दुःखकारी ।
धन्य पुरुष जिन त्यागी अवारी ॥ टेक ॥
आतम भीतर नाहिं दिसत है ।
नित प्रति बहिरातम मगचारी ॥ क्रो० ॥
जगमें जो निमित्त व्यापक है ।
तिनमें नहिं आतम सहचारी ॥ क्रो० ॥
सब चेतन हैं शान्त स्वरूपी ।
सब जड हैं अज्ञान अपारी ॥ क्रो० ॥
हैगा कौन क्रोधका कर्ता ।
कापै क्रोध करै सुविचारी ॥ क्रो० ॥
जहं व्यवहार भूल मग व्यापै ।
तहां क्रोधकी लहरि प्रचारी ॥ क्रो० ॥
निश्चय आतम रूप विराजित ।

क्षमा भूमि ताकी शुचि भारी ॥ क्रोध० ॥
सब पर अन्य दया जिन कीनी ।
उत्तम क्षमा कही अविकारी ॥ क्रो० ॥
होय मगन सुख, दधि निज गुणमें ।
कहां कोप कहां क्षमा विचारी ॥ क्रो० ॥

पद.

मद आठों दुःखदाई, रे मन ! मेरे मद आठों दुखदाई ॥ टेक ॥
जिनमद कीना तिन दुख लीना ।
भवमें भ्रमण कराई । रे मन मेरे मद० ॥ १ ॥
तन धन यौवन हैं क्षण भंगुर ।
विनसत बार न लाई । रे मन मेरे मद० ॥ २ ॥
जाति लाभ कुल बल तप विद्या ।
है सब पुण्य कमाई । रे मन मेरे मद० ॥ ३ ॥
रूप घटे अविकार न रहिए ।
पाप घटा उमटाई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ ४ ॥
चार दिना दीमन उमंग सब ।
काहे गर्व कराई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ ५ ॥
अति कोमल मृदु तो स्वभाव है ।
निश्चय ज्ञान बताई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ ६ ॥
तो बिन मेरे अचेतन दीखे ।
हैं अमान जड़ भाई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ ७ ॥
काको मान करन स्वभाव है ।
ढूंढत कोई नहिं पाई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ ८ ॥

जहां अज्ञान तहां मद आठों ।
जहां ज्ञान मृदुताई ॥ रे मन मेर मद० ॥ ९ ॥
निजानंदको मान मानकर ।
सुखोदधि ज्यों प्रगटाई ॥ रे मन मेरे मद० ॥ १० ॥

गज़ल.

आर्जव स्वरूप धर्ममें चितको लगाइये ।
ऐ मित्र मायाचारीको दिलसे हटाइये ॥ टेक ॥
जिस तनके लिये करता है परिणामको टेढे ।
वह तन छुटेगा तुझसे, यह परिमाण लाइये ॥ ऐ० ॥
मन मे जो होय वोही वचनसे तू नित्य कह ।
कायासे कर वही जगतमें यश को पाइये ॥ ऐ० ॥
साहस की कमर बांध तू इमान पर ही चल ।
चोरोंकी सी आदतमें नहीं दिन कटाइये ॥ ऐ० ॥
कर न्यायसे सौदा न हो परिणाम यह मेज्ञ ।
परिणाम साफ रखनेसे अन्याय टालिये ॥ ऐ० ॥
मेरा स्वरूप शुद्ध सरल बिन दगाके है ।
परमाणुओंका ज्यां नहीं परवेश पाइये ॥ ऐ० ॥
जिस जड़के लिये मायाका होता हृदय प्रवेश ।
उस जड़में नहिं मायाका निशान पाइये ॥ ऐ० ॥
करके सुभेद ज्ञान परम ध्यान विमलको ।
होकर मगन स्वरूपमें समताको पाइये ॥ ऐ० ॥

गज़ल.

मुझे आत्म शुचिता सुहाई हुई है ।

वहीं ज्ञान रचिता जमाई हुई है ॥ टेक ॥
जहां मैलपन हो वहां हो न सुन्न रंग।
सफेदीमें रंगत रंगाई हुई है ॥ वहीं० ॥
मलो तनको कितना न होना यह शुचि है
करम पंक जावे मलाई हुई है ॥ वहीं० ॥
जो तपते हैं तपको वे पाते हैं शुचिता।
उन्हीं को परम रुचि आई हुई है ॥ वहीं० ॥
करो अपना दर्पण इसी भांति निर्मल।
त्रिलोकीकी रंगत दिखाई हुई है ॥ वहीं० ॥
जहां भेद विज्ञान साबुन हो उत्तम।
वहीं आतम चितकी सफाई हुई है ॥ वहीं० ॥
रखो गुणोदधिको जहां नित्य मंगल।
परम सुखमें बुद्धि लगाई हुई है ॥ वहीं० ॥

गजल.

परम कल्याण भाजन है जिसे तिनसे मनाऊंगा ॥
मैं उत्तम दान कर करके, विरुजोंको भगाऊंगा ॥ टेक ॥
जिन्हे मैंने सुझाया है, उन्हे दिलमें बिठाऊंगा ॥ मैं० ॥
करूं मैं लोभका तजना, जभी व्यवहार मग चलूं।
मैं चारों संघ लख करके, सुदानोंको दिलाऊंगा ॥ मैं० ॥
जो अनुभव आपका रस है। उसे देना न वाजिब है।
मगर मित्रोंको दे करके, मैं निज आनंद मनाऊंगा ॥ मैं० ॥
मेरा सुखोदधि मेरे अंदर, न मैं देऊं किसीको वह।
उसीमें नित मगन होकर, परम सुख धाम पाऊंगा ॥ मैं० ॥

गज़ल.

चलो नित ब्रह्म पथमें जिय, अगर निज स्वार्थकी तृष्णा।
मिटा दो मोहके मदको, कि जिस बिन है कठिन तरना॥ टेक॥
अनादि ब्रह्म नहीं जाना, चलो अब्रह्ममें रत हो।
पटकना मैं रहा सबको, सदा पर पदमें गुण हरना ॥ मि०॥
जो नारी आत्म गुणहारी, उसीमें प्रेम अपना रख।
तजी है आत्म भूमिको, जहां ऋषि गणका हो चलना॥ मि०॥
गुफा निज हित अनुभूतिकी, लखी मैंने जो है सुखदा।
उसीमें गुप्त होकरके, सकल अवलम्बको तजना॥ मि०॥
यही है ब्रह्मव्रत अनुपम, यही है आत्मय श्रद्धा।
यही है रत्नत्रय सुंदर, इसीसे भवउदधि तरना॥ मि०॥
मगन हो आत्म सुखोदधिमें, जहां निज स्वाद अनुपम है।
वही दश लाक्षणीव्रत है, उसीको कीजिये सरना॥ मि०॥

पद.

चेतन प्रभूको आज मैं निज ध्यान मैं जपूं।
सब कर्म जाल काट निजानंद सुख पमूं॥ टेक॥
भवउदधिमें अपनी नावको भारी बना चुका।
अब कर्म जलको डारकर निज नावको तरूं॥ चे०॥
रहता था विकल जिस बिना दिन रात पर-अधीन।
उस रत्नको पाकरके निज प्रकाशको करूं॥ चे०॥
मिथ्यात्व अंधेरेका जहां नाम नहीं है।
सब जगकी वस्तुओंको दृष्टिसे अलग करूं॥ चे०॥
अपनी ही मूर्तिको हरेक घटमें देख कर।

मैं रागद्वेष त्यागके संतोषमें रमूं ॥ चे० ॥
त्रैलोकको मैंने बनाया अपना मुन्दर है ।
सब जगमें व्याप करके ज्ञेय ज्ञान मैं करूं ॥ चे० ॥
भवदधिके तट पर जाके शिवालयमें कर प्रवेश ।
आनंद सरोवरमें मैं कल्लोल निज करूं ॥ चे० ॥

पद.

सम्हलकर ज्ञान संयमको, तू दिलमें धार ले प्राणी ।
मिटाके भव व्यथा सारी, निजानन्द सार ले प्राणी ॥ टेक ॥
जो अद्भुत गुण शिवाला है, परम अनुभव दुशाला है ।
उसे तू ओढ़ हर्षित मन, शिशिरता टारले प्राणी ॥ स० ॥
जगत जंजाल कुन्जोंमें, भटकने निज सरम खोई ।
सरम अपनी तेरे घरमें, स्वदर्शन हार ले प्राणी ॥ स० ॥
रतन त्रय एकमें मिलते, तभी अनुभव कला जगती ।
है चेतन शुद्ध उपयोगी, हरण संसार ले प्राणी ॥ स० ॥
सभी विकल्पको हर कर मैं, निजानन्द बन रमूं हितकर ।
सुखोदधि तटमें निश्चल रह, मुक्ताफल भार ले प्राणी ॥ स० ॥

गजल.

करम हरतार श्री जिनको, भजो निजमें खुशी हो हो ।
यही सब द्वंदके हरता, इन्हें ध्याओ खुशी हो हो ॥ टेक ॥
भरमके गहरे सागरमें, बहुत डूबे विषय भोगी ।
चरण श्री आदिका परसा, जगत तिरगा खुशी हो हो ॥ यही० ॥
हमें जिन गुणको शुभ मिश्री, परम सुख स्वाद देती है ।
इसे तजना नहीं भाना, मैं रत होता खुशी हो हो ॥ यही० ॥

मुझे षट् द्रव्य संगममें, रति करना नहीं आता ।
निज आतम द्रव्य रम रहना, परखना है खुशी हो हो ॥यही०॥
सदानंदी चिदानन्दी, भरम फंदोंको जो काटे ।
उसे ही जान निज ढवसे, मगन रहना खुशी हो हो ॥यही०॥
वही सुखोदधि हमारा है, वही रत्नोंका आकर है ।
उसीके रोग हर जलको, पिये रहना खुशी हो हो ॥ यही० ॥

पद.

सम दम सुसार धार करम ताप क्षय करूं ।
मै ज्ञान आप आपको, समाधि विस्तरूं ॥ टेक ॥
देखा जहांके बीच, दुःख राग द्वेष है ।
इनको मिटाके सार वीतरागता धरूं ॥ सम ॥
है गा अनित्य भाव, अमल नित्य भी सुन्दर ।
दोनों विचार संकल्प लय असार परिहरूं ॥ सम० ॥
जिन धर्मकी नौकामें, हो आरूढ चित मगन ।
बाजे बजाके "ॐ" आत्म ध्यान अनुसरूं ॥ सम० ॥
हृदय कमलमें धार, स्व अनुभूति लक्ष्मी ।
नैवेद्य समयसारसे, सुपूज दुःख हरूं ॥ सम० ॥
सुखोदधिके तटपे जाके सैर आत्म बागकी ।
करता रहूं सदा ही, यही भावना करूं ॥ सम० ॥

गज़ल.

धरम आतम धरम सबमें, निराली शान रखता है ।
करम फंदोंको हरता है, सदा गुण ज्ञान करता है ॥ टेक ॥
उसे जो जानता दृढ हो, वह पाता आप निधि सुन्दर ।

यह सम्यक्त चारित्र है, वही मन ध्यान करता है ॥ क० ॥
न है जग रूप यह तन मन, जो उस मा नूर रंग चमके ।
सभी से जो पृथक् गुण मय, वही शिव नारि वरता है ॥ क० ॥
मेरे आंगन वही नूरे, वही चढ़ता उतरता है ।
जो सीढ़ी है स्वांदनकी, उसीमें केउ करता है ॥ क० ॥
है सुखोदधि जलका यह प्याला, जिसे निज करमें सुखसे ले ।
अचल अविरोध ध्यानकर्में, वह पीकर मस्त रहता है ॥ क० ॥

गज़ल.

लगे निज ध्यान आनंदी, जो अमृत को बहाता है ।
उसी की याद में रोशन, जगत सारा समाता है ॥ टेक ॥
वही ज्योति वही गुणमय, वही सतरूप सुखदाई ।
उसीकी लौको जो देखे, वह जटना सब भगाता है ॥ उसी० ॥
बहुत घूमे मवोदधमें, न असनाई लखाई है ।
यही एकान्तका आसन, निजातमको दिखाता है ॥ उसी० ॥
कोई मिथ्यातमें चोटे, यह दफा सुनमे माया है ।
जो है सम्यक्त निज रंगी, वह मत रंगन बढ़ाता है ॥ उसी० ॥
नहीं जगसे मुझे मतलब, न है कुछ मोक्षसे मतलब ।
मुझे सुखोदधि मगन होना, करम अरिको भगाना है ॥ उसी० ॥

गज़ल.

परम स्वातम अनुभव मिठाए हुए हैं ।
जनम तापको शम कराए हुए है ॥ टेक ॥
जो सरवर सुज्ञानामृतोंका मनोहर ।
उसीमें हम आपी नहाए हुए है ॥ क० ॥

जगतकी फिरनकी लगी कालिमा जो ।
परम ध्यानसे सब छुडाएं हुए हैं ॥ करम० ॥
अकामी अलोभी अमानी अरोषी ।
सुधासिन्धुके गुण मनाए हुए हैं ॥ करम० ॥
जहां सत्य अपना वहीं गूढ रहना ।
यती उनकी शिक्षा निभाए हुए हैं ॥ करम० ॥
मैं आतम अलख निर्विकारी निरंजन ।
सु आनंद सागर भराए हुए हैं ॥ करम० ॥

गज़ल.

भरम सारे करम सारे, हरे आतम निहारे हैं ।
जो समदृष्टी स्वरूपी हैं, वे निज अनुभव विचारे हैं ॥टेक॥
नहीं है दूर मुझसे वह, उसीमें मैं हूं नित तन्मय ।
सही सुन्दर विचारोंसे, कुमति सेना संहारे हैं ॥ जो० ॥
मेरा आतम मेरा स्वामी, वही निर्भय मुगति गामी ।
है षट्कारक मेरे तारक, इन्हें निजमें सम्हारे हैं ॥ जो० ॥
है निरद्वन्द्वी सुस्वच्छन्दी, परम ज्ञानी परम ध्यानी ।
मुझे भाती वही मूरत, हम जिसमें दृष्टि धारे हैं ॥ जो० ॥
अकल आनंद मय अद्भुत, सदा ही सत सुधा धारी ।
वह अमृतमय रसायन है, उसे थी भ्रम विड़ारे है ॥ जो० ॥
जो सुखोदधि है वहीं रहना, वहीं कल्लोल नित करना ।
इसे ज़ो सार समझे हैं, वे निज आनंद प्यारे हैं ॥ जो० ॥

गज़ल.

मुझे है ध्यान जिन जी का, वही संकट निवारक है।
अनादि भवदधि डूबा, वही आतमको तारक है ॥टेक॥
न उस बिन चैन पाता हूं, न आनन्द निज लखाता हूं।
मुझे निश्चय यही होता, वही मत ज्ञान धारक है ॥अ० ॥
करम आठों को जलवाके, जो शुद्धातम कहाता है।
वही हूं मैं न कुछ अंतर, वही समता सुधारक है ॥ अ० ॥
यह निश्चयमें जगतसे कुछ, नहीं सम्बंध है मेरा।
मैं जिसका ध्यान करता हूं, वही भव भव सहायक है ॥अ० ॥
बहुत जगमें भ्रमे चेतन, न कुछ आराम पाया है।
मनो सुखोदधि में बह बह कर, वहीं शांति अबाधक है ॥अ० ॥

पद.

मुझे, नित चेतन सुमरण करना ॥ टेक ॥
खेद स्वेद भव वास मिटाके, शत्व अनुभव धरना ॥मुझे० ॥
कर्मांगन में खेल कूद कर, आश्रव छेद न करना ॥मुझे० ॥
हो हुशियार आप आपे में, बन्धन में नहिं पड़ना ॥मुझे० ॥
कर्म दरब नो कर्म भिन्न हैं, जड से काज न सरना ॥मुझे० ॥
अनुपम वीरज मयी पदारथ, निज अंतर निज मनना ॥मुझे० ॥
क्यों जग जाल माहिं मन फंसता, मोह आग में धरना ॥मुझे० ॥
सुख सागर से समता जल ले, भव तज शिव तिय वरना ॥मुझे०॥

गज़ल.

जगत जंजाल से उठकर, मैं निर्भय थान जाऊंगा।
यहां हैंगी जो आकुलता, उन्हे इक दम मिटाऊंगा ॥टेक॥

कुरी सगति जो परकी है,उसी से बध में पडता ।
मैं सब बधन अनादिका,स्व अग्नि से जलाऊंगा ॥यहां० ॥
जो मेरा रूप है स्वाधीन, चेतन मय परम सुखिया ।
उसी से नेह करके मैं, भरम संतति हटाऊंगा ॥यहां० ॥
किया सयोग जिस घरका, बदलता है हर एक क्षण में ।
अब इस का ध्यान सब हरकर, निजातम रग ध्याऊंगा ॥यहां०॥
जो हैं परमेष्टि जग पांचों, शरण उनकी निरख लीजे ।
परम निश्चय निजातमकी, शरण में निज रखाऊंगा ॥यहां०॥
सुखोदधि देख लो वहता, है तेरे ज्ञान अम्बुज में ।
इसी की सैर नित करके,परम अमृत जगाऊंगा ॥यहां०॥

गज़ल.

परम रस है मेरे घटमें,उसे पीना कठिन सुन ले ।
जगतरस में जो भीगे है,उन्हें समरस कठिन सुनले ॥टेक॥
है भव आताप दुखदाई,किसीने चैन नहि पाई ।
जो इनके संग मे उलझे,उन्हें शिव सुख कठिन सुन ले ॥ परम० ॥
प्रथम पदमे जो काटे है,उन्ही से छिद रहा यह तन ।
जो भेद ज्ञान का शस्तर,उसे पाना कठिन सुन ले ॥परम० ॥
बचाकर रखना आपे को,है शूराई परम अदभुत ।
जो भव थिति नाश करलेते,न निज सुख कुछ कठिन सुनले॥परम०॥
जो सुखोदधि में रहे लौलीन,उन्हे वेकार कह दीजे ।
परखना ऐसे पुरुषों का, जगत मे है कठिन सुन ले ॥परम०॥

पद.

परम पद देख मम चेतन,वृथा क्यों दुख उठावे है ।

तेरे चरणों में जो अमृत, उसे वृथा गमावे है ॥टेक॥
न पावे है सुखासन को, तू करके नेह पर वस्तु।
यदि दाना तेरा आतम, तो दुख सारा भुलावे है ॥तेरे०॥
अकामी लोभ त्यागी हो, सुसमता में रहे कायम।
जो निज आतम के अनुभव में, गुप्ति त्रयको जमावे है ॥तेरे०॥
सदा संसार में रहते, हुए जो निज दृढावे है।
वह अकलंकी अमर अशरण, मेरे भव दुख मिटावे है ॥तेरे॥०
न जाना था अनादि काल से, भ्रमण मेरा होता।
श्रीगुरु ने कृपा कीन्ही, वही समरस चखावे है ॥तेरे०॥
सुखोदधि सार दुख हारी, वहीं रहना मेरे निश्चय।
इसी में गुप्त हो जाना, परम मुक्ति दिलावे है ॥तेरे॥०

गज़ल.

हरो अज्ञान तम सारा, कि जिससे ग्वार दिल छाया।
मैं सब संसार को तजकर, तेरीही शर्ण में आया ॥टेक॥
मुझे कुज्ञानने अबतक, बहुत भव भव भ्रमाया है।
न समता सार सुख पाया, निराकुल रूप नहिं धाया ॥हरो०॥
जो ममता मोह है परका, वही जगकी व्यथा करता।
यह पुद्गल ठाठ नहिं मेरा, सही निश्चय है उमगाया ॥हरो०॥
निजानंदी अरूपी जो, नहीं चिन्तनमें आवे है।
उसे हिय में गृहण पाता, सुधा मेघोंका रंग छाया ॥हरो०॥
बरसता है यहा अमृत, प्रवाहोंकी नहीं संख्या।
इसे सुखोदधि बनाऊंगा, यही उद्यम है ठहराया ॥हरो०॥

गज़ल.

करो नित ध्यान जिनराई, कि हो जिससे सफल काया ।
पड़ा क्यों स्वप्न देखे है, वृथा क्यों मनको भरमाया ॥टेक॥
स्वरूपानंद सुखकारी, सुमूरति ज्ञान सागर है ।
सदा पूजा कर इसीकी, कि जिसने राग सटकाया ॥पडा०॥
श्री सद्गुरुके वचनोंमें, जो श्रद्धा सार रख देते ।
कुभावोंका मरम हरके, भरम निज तत्वका पाया ॥पडा०॥
सुधामय धार बरसाते, जो अनुभव जलके गागर हैं ।
इन्हें पीकर सुखी होते, जगत संताप मिटवाया ॥पडा०॥
तेरे आगे भरी निध है, मत आंखें मीच रे भाई ।
जो पुरुषारथको करते हैं, उन्हें सुखदधि अभय भाया ॥पडा०

गजल.

जगत भ्रमसा लखा जबसे, तभीसे आप हिय भाया ।
वह सत कल्याणका करता, मेरे चितमें उमंग आया ॥ टेक ॥
न यह रगत सुहाती है, न वह रंगत लुभाती है ।
मेरे परिणाम निर्मल है, यही निश्चय है ठहराया ॥ वह० ॥
निजातम रूपकी शोभा, मेरे आगे है जब नाचे ।
मेरा दुःख दर्द हर सारा, मुझे सुखिया ही करवाया ॥वह०॥
जो मोहानलमें जलते हैं, न समता सिंधु पाते हैं ।
मुझे षट् द्रव्य निर्णयने, सभी झगडोंसे हटवाया ॥वह०॥
एकाकी ब्रह्म चिन मूरत, लखा वेदाग वेसूरत ।
सुखोदधिमें हुआ तन्मय, परम निधि आप्त गुरु पाया ॥वह०॥

लावनी.

श्री भद्रवाहुके चरण कमलको हे प्राणी वन्दन करलो ।
निज अनुभव दातार मुनिके, शरणमें निज आतम धरलो ॥
सर्व परिग्रह छोड मोह धन धान्य देहका तज दीना ।
अलख निरंजन ज्ञान मई, चेतन अनुभवमें चित दीना ॥
पंचाचार पालते हियसे बहुतोंने समगुण चीन्हा ।
छोड़ सकल जग धंध, गुरुके चरण कमलमें चित लीना ।
सर्व कुभावोंको हरके निज भावोंमें दिढ चित करलो ॥ निज० ॥
चन्द्रगुप्त नृप देख मुनिको, मनमें बहुत वैराग्य धरा ।
छोड संपदा नग्न रूप हो, पच महाव्रत सार धरा ॥
गुरुके चरण कमलमें भ्रमरा हो मनको तल्लीन करा ।
वैय्यावृतमें खूब मगन हो, तप पालन अभ्यास करा ॥
ऐसे सत्य मुनीको रे मन, वार वार चिन्तन करलो ॥ निज० ॥
लख दुकाल उत्तरमें श्रीगुरु, दक्षिणमें प्रस्थान करा ॥
द्वादश सहस शिष्य मुनि चाले, श्रीगुरु आज्ञा मान्य करा ॥
वेलगोला पर्वत तट आए, आयु कर्मको भग्न करा ।
छोड सकल मुनि संघ, समाधि मरणका चित हुल्लास करा ॥
ऐसे पडित मरणके करताको, हरदम सुमरण करलो ॥ निज० ॥
चन्द्रगुप्त मुनि सेवा कीनी, चन्द्र गुफामें ध्यान धरा ।
निश्चल आतम तत्व लखा, निज अनुभव अमृत पान करा ॥
देह छोड़ मुनि स्वर्ग पधारे, सुत केवलि इह वास हरा ।
तिनके चरण कमलकी रजको, मुनिगण मस्तक माहि धरा ॥
सुख सागर गुण ध्यान मई, सत संग अपुरव नित करलो॥ निज० ॥

गज़ल.

सम रस सुधाका पान, परम तृप्तता करे ।
इसको पियेसे पुष्ट हो, कर्मोंसे जा भिडे ॥ टेक ॥
जिनके तू पेंचमे पडा, आपे को खो रहा ।
वे जड है क्यों तू भूलता उनसे न क्यों अडे ॥ इसको ॥०
भय शोक राग द्वेष मोह तुझको मरमाते ।
अज्ञानके वालक इन्हें क्यों दूर न करें ॥ इस॥०
होकर पवित्र छाड तू, मिथ्यात मल अरस ।
सम्यक्त्व ज्ञान चर्णसे कारज सभी सरे ॥ इस० ॥
सुखोदधिमें डूवना अगर मजूर है जीवो ।
अनुभव सु आपका करे, शिव मगमें संचरे ॥ इस० ॥

पद.

मुझे तेरा भरोसा है श्री जिनजी खबर लीजे ।
पड़ा हूं राह संसारी मुझे वेराह कर दीजे ॥ टेक ॥
मुझे मिथ्यात्व प्रकृतिने वहुत झोके दिलाए हैं ।
इसे काटो मेरे स्वामी, परम सम्यक् स्वघन दीजे ॥मुझे०॥
जो है अज्ञानकी वदिश उसे है खोलना सुखकर ।
मुझे निज ज्ञान अमृतका पियाला एक पिला दीजे ॥मुझे०॥
असंयममे फसा रह कर करी स्वच्छद मय घटना ।
मेरे इस पथको प्रभु हरकर, सु सयमरत्न मणि दीजे ॥मुझे॥०
है रत्नत्रय मई मेरा सही निश्चयसे यह आतम ।
तो सुखोदधि जान रस पीना, यही आदत मुझे दीजे ॥मुझे.।०

गज़ल.

हुए संसारसे उन्मुख, उन्हें जगवास क्या करता ।

जो सम सुख सार पाते हैं, उन्हें भव खार क्या करता ॥टेक॥
उठाई हैं बहुत आफत, न जिसके ज्ञानको पाकर।
उसी सुन्दर वदन चेतन, विना उपयंग जड़ रहता ॥जो०॥
वचन जिसके जगाते हैं, मुझे निश्चय कराते हैं।
उसी अरहतकी सेवा, अरे मन क्यों नही करता ॥जो०॥
जो सिद्धोंमें ही आतम है, वही तव घटमें व्यापक है।
पृथक् है पर उसे एकसा, आपे में नहीं लखता ॥जो०॥
जो व्यवहारी करम करते, वही कर्मोंसे बध जाते।
परम निश्चय–सुखोदधिमें, तू आकर ताप नहिं हरता ॥जो०॥

पद.

तेरे दर्शनसे परसन हम हो जायगे।
चेतन शक्तिको निजमें दिपाए जांयगे ॥ टेक ॥
जिसकी ज्योति न हो तो अंधेरा रहे।
ऐसी ज्ञानात्म ज्योति जगाये जायगे ॥ चेतन० ॥
भेद विज्ञानका है ठिकाना कठिन।
मोह दर्शनकी भीति गिराये जायगे ॥ चेतन० ॥
चंचल चपला विषयकी जो नारी प्रबल।
इसकी सगतिसे दृष्टि हटाये जायगे ॥ चेतन० ॥
जो है तीनों रतनका धनी वे मिसाल।
उसकी प्रीतिमे आपा दिढाये जायगे ॥ चेतन० ॥
खार भव दधिके जलसे घृणा हो गई।
मिष्ट सुखोदधि स्वरस ही पिलाये जायगे ॥ चेतन० ॥

गज़ल.

वहीं कल्याण है अपना, जहां सम सुख निकट होता।
वहीं आतम स्वनिधि पाता, जहां भव दधि निकट होता ॥टेक॥
कलुपता आत्म भावोकी, अरे ! मन त्याग दे जल्दी।
कषायोकी बुरी उलझन, हटादे काम झट होता ॥ वहीं० ॥
निकल पर पदके फन्दोंसे, स्वपदकी ओर धर चितवन।
तेरा सच्चा हितू मिलता, सुधा निजरस गटक होता ॥ वहीं० ॥
अकल अजरूप अविनाशी, अमिट आनंद चितराशी।
जो सोहं लय लगाता है, जगत सागरके तट होता ॥ वहीं० ॥
तू मन अब बैठ कोनेमें, एकाकी ज्ञान परिणतिमें।
तो सुख सब निज उमड आता, सुधासुख तब अघट होता ॥वहीं०॥

गज़ल.

अकल निर्भय स्वरूपानंद, भज समता जगा लीजे।
जो है भ्रम भावकी मलता, उसे भवदधि बहा दीजे ॥ टेक ॥
जो है पर रूप आकुलता, उसे निजसे विदा कीजे।
है आतम ज्ञान सुख कारी, उसीको नित रटा कीजे ॥ जो० ॥
अनादि बंधु बहु पाये, बहुतसे मित्र ठहराये।
करम भोगी न कोई साथी, यही सत ज्ञान मन दीजे ॥ जो० ।
है अपना मित्र परमारथ, वही बंधु वही सुख कर।
उसीसे प्रीति कर लीजे, सुधा प्यालेको झट पीजे ॥ जो० ।
उपजती है विनशती है, जो है पर्यायकी रचना।
सदा थिर रूप द्रव्योंसे, उसीमें दृष्टि धर दीजे ॥ जो० ।
है अविनाशी परम चेतन, गुणका धाम सुख राशी।

न बनता है न बिगड़े है, उसे लख मोह तज दीजे ॥ जो० ॥
जो ध्याता ध्येय ध्यानोंकी, परम गुण एकता अनुपम ।
उस सुखोदधि सु पावनसे, निजातम मल छुडा लीजे ॥ जो० ॥

गज़ल.

वहीं आनंद घर मेरा, जिधर उपयोगकी थिरता ।
जो चचलता वही बाधक, वहीं है नित्य आकुलता ॥ टेक ॥
विषयकी वासना दुखदा, वहीं है आर्तकी चिन्ता ।
कषायोंकी लडी लाती, है कुत्सित रौद्र संकलता ॥ जो० ॥
जो दोनोंकी शमन हालत, वहीं शुभ ध्यानका वर्तन ।
करम वल्के मिटानेको, है आतम ज्ञान ठाकुरता ॥ जो० ॥
जो समता राग गावे है, वही ममता हटावे है ।
जो चेतन बाग नाचे है, वही भोगे स्वसुख मत्ता ॥ जो० ॥
जो है जिस रूप का मोही, वही उस रूपको पाता ।
सुखोदधि ध्यान करते है, हरे भवदधि की व्याकुलता ॥ जो० ॥

गज़ल

निगली कूट में रहकर, शुद्धातम की खबर करनी ।
यही निश्चय मुझे करना, जो मत गुरु मार्ग की धरनी ॥ टेक॥
गुप्त रहना लगे अच्छा, निराकुलता जभी होगी ।
श्रीसतगुरु ने बतलाया, यही दुख द्वन्द कुल हरनी ॥ यही० ॥
विषय की चाह है खोटी, न चारित्रवान होने दे ।
यही अवनति की सीढ़ी है, इसे क्षण एक में तजनी ॥ यही० ॥
जो सतगुरु चर्ण शरणा ले, अमर पद में उलंब आवे ।
जहां उत्पाद व्यय निवसें, शुक्ल शांति सुधा झरनी ॥ यही० ॥

गज़ल.

श्रीजिन शांतपद तेरे, मेरे घट वास करते हैं ।
मेरी भव भवकी जो वाधा, उसे वे दूर हरते हैं ॥ टेक ॥
नहीं पुद्गलमई यह पद, परम चैतन्यता धारी ।
नहीं पुद्गल विलोके है, ग्हां चेतन दर्श करते हैं ॥ मेरी० ॥
सिंहासन जो अमल अनुपम, स्वसत्ता का है सुखकारी ।
वहीं एकरूप धीरज मय, परम थिर आप धरते है ॥ मेरी० ॥
त्रिगुण आतम है छत्रत्रय, न भव रवि ताप पडता है ।
शुकल भावों के चमरों से, भगतजन भक्ति करते है ॥ मेरी० ॥
परम मंगल मई सोह स्वगुण का गान सुखदाई ।
अखिल अनुभव की स्तुति से, क़रम रज भिन्न करते है ॥मेरी०॥
सुखोदधि का धरणहारा, नहीं मर्याद तव गुण हैं ।
तेरे मुख को निरखते है, परम आनद वरते हैं ॥ मेरी० ॥

गज़ल.

अनोखे पंथमे चलकर, मुझे भवदीप तजना है ।
मुकति नारी के वरने को, सही निज रूप सजना है ॥ टेक ॥
परम समता मई धरणी, जहां सम्यक्त है अनुपम ।
इसी सद्वृक्ष की वृद्धि से, अमृत फल का लगना है ॥ मु ॥
उठो, मतदेर अब करिये, जिनागम पाठ उच्चरिये ।
कि जिससे हो प्रगट निज धन, उसीसे काज सरना है ॥ मु ॥
है मंगलमय परमपद जो, नहीं मुझसे निराला है ।
है एकाकी यह इकताई, इसीसे कर्म झरना है ॥ मु० ॥
चलो सुख दधि नहावें अब, वहुत भव दधि विपत पाई ।

परम सिद्धनके निर्मल गुण, सदा सुख रूप भजना है ॥मु०॥

पद.

मैं तो चेतन नगरिया जाऊंगा ॥ मैं० ॥
स्याद्वाद वाणी सुखदाई, ताकी राह लखाऊंगा ॥ मैं० ॥
संशय विभ्रम मोह हटाकर, सम्यक्मति झलकाऊंगा ॥ मैं० ॥
सोहं ध्वनि करताल बजाकर, अनुभव गाना गाऊंगा ॥ मैं० ॥
क्षमा शील सम्यकके भूषण, पहन पहन हर खाऊंगा ॥ मैं० ॥
सर्व सिद्ध शुद्धात्म प्रभु लखि, मनका मैल मिटाऊंगा ॥ मैं० ॥
संगति सुखकारी निज चेतन, पाकर पर न लडाऊंगा ॥ मैं० ॥
सुखुदधि तटपर निजवासा ले, आतम ध्यान लगाऊंगा ॥ मैं० ॥

गजल.

परम समता सुरस गागर, अगर भरना तुझे होवे ।
तो जा आनंद दधि भीतर, तृपत कर्ता तुझे होवे ॥ टेक ॥
सकल भवके सुखोंको जीर्ण, तृणवत् जिमने लख डाला
वह भव उन्मुख स्वपथमे रह, जहां आनंद नित होवे ॥तो०॥
वचन श्री जिनके अविकारी, हरे भव व्याधि सुखकारी ।
श्री गणधरने चित धारा, तुझे कल्याण कर होवे ॥ तो० ॥
मनन जिनका करें जो जन, करम रजको उड़ाते है ।
जो ताकत अपने आपेमें मुबारक हर घड़ी होवे ॥ तो० ॥
सभी परतत्रता तजकर, परम निज तंत्रता लीजे ।
मिटे सकट विपिन–भवके, हरख अनुपम तुझे होवे ॥ तो० ॥
है सुख सागर परम अद्भुत, जहा मज्जन है मलकल हर ।
निकट तू बैठ जा वाके, सुनिश्चल ध्यान चित होवे ।.तो०।।

गज़ल.

निजातम सार सुखदाई, वहीं निज लब्धि झलकाती ।
जो चेतन सार वन्दे है, उसे अनुभूति ढिग आती ॥ टेक ॥
अनादि खेद पा पाकर बहुत दुखडा उठाया है ।
चमन निजरंगका खुशरग, खुश खुशबू सदा आती ॥ जो० ॥
उसीमें सैर कर प्यारे, जहां नहिं हो थकन तुझको ।
परम पुष्टिके पानेमे, सुसंगति सार लहराती ॥ जो० ॥
करम आठो हैं दुखदाई, जो राग अरु द्वेष बोने हे ।
उन्हीका ध्वंस कर डालो, परम समता झलक जाती ॥ जो० ॥
पदारथ दूसरे बहुते, न कुछ वे कार्य आते हे ।
जो आतम भक्ति करते हैं, उन्हें सुख शील मिल जाती ॥ जो ॥

पद.

निज चेतन रंग रंगले मनुवा ॥ निज० ॥
क्यों भव बीज लाज खोई है, समतासे मिल ले रे मनुवा ॥ नि० ॥
इन्द्रिय विषय कषाय ठगायो, निज धनको तो परख ले मनुवा ।
खेद स्वेद मद भेद रहित जिन, तासे निज हित करले मनुवा ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र मूरती, दर्शन कर मन्न भरले मनुवा ।
एक अनेकी चिद्रुपी सत, ताके आंगन रमले मनुवा ॥
सत साधु जन जा विन थोथे, ताको सुमरण करले मनुवा ।
भव तम घातन भानु स्वरूपी, निज नभ मंडल रखले मनुवा ॥
सुख दधिमें जा मुक्ति द्वीप लहि, आनंद अनुभव करले मनुवा ।

गज़ल.

चरण रज नाथ जिनवरकी मैं माथेमें लगाऊंगा ।

दया सागर प्रभु मेरे इन्हें घटमें बिठाऊंगा ॥
भरमकी गांठ अब खोले, बहुत घुमे है दुख पाया ॥
जो अपना शुद्ध चेतन है, उसे लख कर हसाऊंगा ॥ १ ॥
है सब द्रव्योमें अव्यापक, जो व्यापक अपने आपी में ॥
इसीकी जान कर रगत में तन अपना रंगाऊंगा ॥ २ ॥
मति श्रुत ज्ञानसे अनुभव निजातमका विमल पाकर ।
करम संतापकी गरमी, उसे एक दम शमाऊंगा ॥ ३ ॥
भवो दधि है विकट बेढब नहीं है यहा पता सुखका ॥
सुखोदधि अपना आपी है, इसीमें डूब जाऊंगा ॥ ४ ॥

गज़ल.

भजन श्री आदि जिनवर का, अरे प्राणी तू नित करले ।
स्वपर उपकार चितमें धर, समय अपना सफल करले ॥ टेक ॥
अनादि राग द्वेषादि तेरी ही भूल है भाई ।
तू निज आनद मय अनुपम, सुमर कर्मन को दलमल ले ॥ १ ॥
किया उपदेश आतम का, मिटाया तम सकल भारी ।
प्रभूकी मूर्त्ति चिन्मय वही अपना दखल करले ॥ २ ॥
सुर नर गणधर सभी मिल कर, प्रभू चरणोमें दृष्टी धर ॥
वचन अमृत स्वसुख मयको, निज अनुभव स्वादमें करले ॥ ३ ॥
सुखोदधिमें समा जाना, यही भाता है अब बाना ॥
जगतसे दिलको हटाना, सुसम दम मय चमन करले ॥ ४ ॥

पद.

कर मन अनुभव प्राणी, त्याग आकुलता संशय ज्ञानी ।

देख चिदानंद साहब तेरा, जो तुझ घट ठहरानी ॥ कर० ॥
द्वीप अढाई क्षेतर तेरा, सब समता गुण सानी ॥ कर० ॥
तीन लोक स्पर्श करत है, शुद्ध स्वरूप बखानी ॥ कर० ॥
भव आताप नहीं तेरेमें, तेरी मानी दुख दानी ॥ कर० ॥
निज गुण पर्य्यय निज गुण तेरा, केल करहु सुखदानी ॥क०॥
वीतराग सर्वज्ञ परम गुण, निजमें निज विलसानी ॥कर०॥
दृष्टि फेर निश्चयमे आजा, नहीं क्रिया कोई जानी ॥कर०॥
समरस अमृतधार बहत है, अवगाहन भव हानी ॥ कर० ॥
सुख दधि तीर पहुचिहै वो ही, जो हो आतमज्ञानी ॥कर०॥

पद.

निज हिय चेतन ध्यान सवारो, क्यों लागे पर पुद्गल सेती ॥नि०॥
तापमई भवकी सगतिसे, निज आतम निज लो नहिं देती ॥नि०॥
अमल अकट शशि समशाति कर, ज्योति विमल तम मम हर लेती ॥नि०॥
नित्य अनित्य एक अनेकी, विन मूरन चिन्मूरत चेती ॥नि०॥
शुद्ध फटिकमय निज कायामे, ज्ञेय दिपत गुणरूप समेती ॥नि०॥
फटिक जु तन्मय निज अनुभवमे, छाड रुचिसे सब जग खेती ॥नि०॥
षट् रस रसिया जी सो दुखिया, सुखदधि रसिया आनद नेती ॥नि०॥

गज़ल.

अनुभव स्वरूपका त कर निज धर्मके लिये ।
प्रमाद चोरको हटा स्वकर्मके लिये ॥ टेक ॥
शुभ के खयाल में क्यों मन तू हुआ गाफिल ।
सुन्दर सुनिर्मल भूमिमें चल शर्म के लिये ॥ प्र० ॥

अशुभों के रंग मे नहीं रंगना कदापि मन ।
चित रूप की परिणति परख स्वधर्मके लिये ॥
आकुल क्यों हो रहा है जगत के सनेह में ।
चिन्ता को तज समाधि रख अकर्म के लिये ॥
सुखोदधि में जो तन्मय हैं वही शिव स्वरूप हैं ।
उनही का भजन कर तू परम धर्म के लिये ॥ प्र० ॥

पद.

निजनिधि दर्शन कर मम भाई, क्यों संसार बनाया हे रे ।
क्यों परमें ममता बुद्धिकर, परमें आप फंसाया हेरे
समता में रमता जो सुख से, सो भव सिन्धु सुखाया हेरे ।
संयम शील रतनत्रय नेरे, तिन से नेह छुडाया हेरे ॥
अकल सकल परमातम द्वैविधि, तिनमें चित न जमाया हेरे ।
सुखदधि तेरा रूप विमल है, दर्पण सम नहिं भाया हेरे ।

गजल.

परम निग्रथ जिन आगम, सुमर निज देव सुखदाई ।
वही भवदधि सुखावे है, उसीमें आप ठकुराई ॥टेक॥
हजारों बार तनमन की, व्यथाओं से सुखा आया ।
जो अमृत अपने घर में है, उसी की धार मन भाई ॥ १ ॥
भरम की पोट सब डाली, सम्हाली आपनी रंगत ।
रंगे निज रग अनुपम में, स्वाभावों की झलक आई ॥ २ ॥
जगत एक नाट्यशाला है, नचे पुद्गल रिसाला है ।
जो चेतन है वह चेतन है, रहे एकतार एकताई ॥ ३ ॥

अकल अज भेद भवदधि हर, लखे उसको जो है मतिधर।
सदा सुखदधि मे डूबे है, सुधा तृप्ति उमग आई ॥ ४ ॥

पद.

निज कारज में ढील करोना, क्यों अपनी पत खोवत होगे ॥ टेक ॥
वृथा काल गमाया अपना, क्यों सुख बीज न बोवत होगे ॥नि०॥
रैन दिना धन कन धर चिन्ता, कर्म बांध क्यो रोवत होगे ॥नि०॥
बन्ध विदारण पैनी छैनी, भेद कला न समोवत होगे ॥नि०॥
परमारथ पद अनुपम सुंदर, निज घट काहे न जोवत होगे ॥नि०॥
राग द्वेष भव फन्द बनावें, तज सम सुख नहि टोवत होगे ॥नि०॥
उतर पार भवखार धारसे, सुख निधि काहे न ढोवत होगे ॥नि०॥

गज़ल.

परम पद अपने घरमे है, इसे देखे जो हो चतुरा।
न बाधा मोह शत्रुकी, कभी पावे न हो खतरा ॥ टेक ॥
वृथा भव वन भटकनेसे, न मिलना है कोई आराम।
अगर सत् सुखको चाहे है, तो कर आपेमे नित जतरा। न०॥
निराली सप्त भगीसे, सकल तत्वोंका परचा कर।
सु आतम लब्धि पाते है, वे पीते ज्ञान सुख कतरा ॥न०॥
क्रिया करनी अगर तुझको, तो कर्ता हो स्वसद् गुणका।
वृथा भव राग द्वेषोंमे, क्यों लिखता कर्मका सतरा ॥न०॥
महल सुन्दर सु समताका, त्रिलोकी राजके ऊपर।
चलो सुखदधिसे जल लेकर, भरों निज आपका पतरा ॥न०॥

गज़ल.

अमल निज रूप सत् चिद्मय, उसे जानो भ्रम हरलो ।
करम की गांठ को काटो, धरम अपना नरम करलो ॥ ठेक ॥
तेरे घट वीच जो साधु, न जिसके वस्त्र रोगन है ।
उसी की भक्ति में रे मन, मझो हो ध्यान सम करलो ॥ १ ॥
जगत की जो अमलताई, उसे लख सर्व सुखदाई ।
जो द्रव्याधार दृष्टि है, उसे पा निज सरम भरलो ॥ २ ॥
निधि अपनी न छूटेगी, न अपनी शान लूटेगी ।
जो अपने से निराला है, उसीमें सब भरम धरलो ॥ ३ ॥
हो आपी आप इक रंगी, मिटाओ ठाठ बहुरंगी ।
शुक्ल वस्त्रों की जो शोभा, उसीमें आप रुख करलो ॥ ४ ॥
बिठाओ आपको हरदम, सुपद के शुद्ध आसन पर ।
सुखोदधि के विमल जल से, उसे अभिषेक नित करलो ॥ ५ ॥

पद.

निज रमनी संग राचो, रे मन मोरे निज रमनी संग राचो ॥ रे० ॥
पर परणित रमणी दुखदायिनि, तामें मन नहिं माचो ॥ रे० ॥
मोह रिपु के फंदे पडकर, घर क्यों बनाते कचो ॥ रे० ॥
ज्ञान विराग मित्र सत तेरे, ध्यान है रक्षक साचो ॥ रे० ॥
जिसको मुझाया सर्व गमाया, लख भाव श्रुत बाचो ॥ रे० ॥
मोक्ष महलमें बैठ सुखासन, निज जानो सु अबाचो ॥ रे० ॥
शिव सुख सागरमें तन्मय हो, हो चिरकाल अनाचो ॥ रे० ॥

ग़ज़ल.

करम ठगको भगा करके, मैं निज धनको लखाऊंगा ।
कि जिसके बिन भया दुखिया, उसे आपे में पाऊंगा ॥टेक॥
जो चहुगतिके रमैया हैं, ये ही हैं दीन संसारी ।
उन्हीं सम्यक्त कुन्जीको जगत संकट मिटाऊंगा ॥ १ ॥
अमिट है रूप यह मेरा, इसे पर सा मैं लखता था ।
मुझे दर्पण मिला अपना, अनादि भ्रम हटाऊंगा ॥ २ ॥
सकल यह लोक है मुझमें, नहीं बाहर कोई मुझसे ।
तदपि मैं तो निराला हूं, अलख ज्योति जगाऊंगा ॥३॥
हकीकत अपने घरकी अब, मुझे रोशन हुई सुखसे ।
मैं सुखदधिमें मगन होके, परम सुचिता रखाऊंगा ॥४॥

पद.

मेरे घरमें चेतन राजा, मैं क्यों पासे नेह बढाऊंगा, ऐजी मेरे०
शक्ति अपारी गुण भण्डारी, सतगुरु ज्ञान समाजा ।
मोह तिमिर क्षय कारण भानु, निज अनुभूति विराजा ॥मेरे०॥
शिवघर धारी कर्म प्रहारी, निज आनंद गुण साजा ।
जो जानै मानै निज ध्यावै करे सुआतम काजा ॥ मेरे० ॥
दश लक्षण रत्नत्रय बारह, भावनसे मन छाजा ।
रक्षा हो भव रिपुसे नित ही, हो अनुपम रस ताजा ॥ मेरे० ॥
आपहि साधन आपहि साधक, सेवक आपहि राजा ।
सुखसागर है मंगलकारी, क्षोभित सोहं बाजा ॥ मेरे० ॥

ग़ज़ल.

परम सुख मेरे घटमें है, क्यों देखे परमें ऐ बीरा !

निष्कट निर्भय निजातम है, इस लोकमें हीरा ॥ टेक ॥
अतत्वोंकी घटा काली, तेरे श्रद्धान पर छाई।
परम श्रद्धान सम्यक्का, चलावो आप सुख सीरा ॥ १ ॥
अंधेरा भव स्वरूपी सब, निकल जाता सुबोधोंसे।
ये ही किरणें हैं आतम भानु की अपनेमें ऐ वीरा ॥ २ ॥
चला चल हो रही जो कि, कषायोंकी तरंगोंसे।
स्वचारित्र यंत्रसे बांधो, जो हो निश्चल मुक्तगीरा ॥ ३ ॥
चढो अनुभवके घोडेपर, शिव महलमें जा पहुंचे ।
सुखोदधि सार है जिस जां, वहा डूबो न हो पीरा ॥ ४ ॥

पद.

निज शुधि चेतन लेले मेरे, क्यों परमें बौराया है रे ॥टेक॥
तेरा धन तुझ पास छिपा है, क्यों नहीं उसे लखाया है रे ॥१॥
अपनी है अविनाशी काया, क्यों तन क्षणिक लुभाया है रे ॥२॥
रंगभूमि रमणीक है तेरी, क्यों न आप स्वनाया है रे ॥ ३ ॥
आनंदसागर भरा आपमें, क्यों न शुद्धता लाया है रे ॥ ४ ॥

गजल.

परम आनंद निज घटमें, मगर पाना उसे मुश्किल।
श्री जिनराजसे मिलना, लगाना दिलका है मुश्किल ॥ टेक ॥
जो है निज रूपमें मेरा, प्रभु वह ही तो मैं ढूंगा।
यह बातोंका बनाना छूट जाना सत्य है मुश्किल ॥ १ ॥
भरा सागर है अनुभवका, सभी जा फेर कर दृष्टि।
उसे लख मगन हो रहना, सरासर हैगा यह मुश्किल ॥ २ ॥
न कुछ अंदर भी कहना है, न बाहरसे वचन कहना।

न कुछ हिलना अडिग रहना, स्वरूपानंदमें मुश्किल ॥ ३ ॥
है सुख सागर बडा ठंडा, भवातापोंका सत शत्रु ।
इसीकी संगति करके, अमल रहना सदा मुश्किल ॥ ४ ॥

गज़ल.

तुही है सार जग भीतर, अरे प्राणी सुमर ले तू ।
तू आपी आपका प्यारा, उसे मनमे सुमर ले तू ॥ टेक ॥
न सुमरणमें वह आता है, न जल्पों में समाता है ।
जहां थिरता समाधि है, उसे दिलसे जकड ले तू ॥ १ ॥
करम फंदोंसे है बाहर, मुकति नाथोंको है जाहिर ।
करम त्रैकालकी सेती, पृथक् निजको ही कर ले तू ॥ २ ॥
क्यों परकी चाह कर करके, तू अपनेको सुखाता है ।
निकट तेरे तेरा दिलवर, उसे जप ले हुनरसे तू ॥ ३ ॥
है सुख सागर महा सुन्दर, उसीके जलको पी करके ।
तृपत होकर अमर सुख लब्ध करना निज लहरसे तू ॥ ४ ॥

पद.

निज चेतन गुण गावो रे भाई मेरे ॥ टेक ॥
अमल अमूरत खंड रहित प्रभु, तामें दृष्टि लगाओ रे भाई मेरे ॥ निज० ॥
पर परणति तज निजमें निज भज समता सार जगाओरे भाई मेरे ॥
कर्म कलंक बहावन कारण, जल सुविवेक बहावो रे भाई मेरे ॥
आप अजाची स्वगुण स्वमाची, निज सत्ता सम्हालो रे भाई मेरे ॥
सब गति रहित स्वगति प्रगटावन, अनुभव दीप जलाओरे भाई मेरे ॥
सुख सागर वर्द्धनके कारण, चन्द्र कला प्रगटाओरे भाई मेरे ॥ निज० ॥

पद.

आतमराम सुमर चितसे, क्यों परमें दृष्टि लगावे थोथी ॥टेक॥
निश्चय नयमें रूप बसत है, क्यों करमें गृह राखी पोथी ॥१
हो व्यवहार रसिक हर क्षणमें, भूल गया निजमें जो निधि थी॥२
कर धन निज प्रिय भोजन काजे, यतन उदास होय भोगन थी॥३
सत व्यवहार मोक्ष मग साधक, करत मिटन परणति दो जड थी॥४
शुद्ध चिदातम रत्न अबाधित, मन धारत नाशत तम छोथी ॥५
निज सुखसागरमें जा रहिये, ज्ञान समाधि उदय हो अब थी ॥६

गज़ल.

परम सुखदाय जिन वाणी, उसीका पाठ करले मन ।
करम बंधनके टुकडे कर, परम समता सुमरे मन ॥टेक॥ १
नहीं संसारमें कोई तेरा हम दर्द सुख दाता ॥
जगत संताप करता नाम, सोहं जाप करले मन ॥ २
गुरू अरु देव है आपी, है आपी शिष्य अरु साधक ॥
परम सत मार्ग शुद्धिका सु साधन आप करले मन ॥ ३
रहो सुखदधिमें निज रमकर, जहां नहीं व्याधि है कोई ॥
उसी आनंद पथमें नित, कदम अपना जकड ले मन ॥ ४

पद.

परम समता प्रसारनको परम गुरुका शरण लेना ॥
यही आनंद अमृत है इसीमें आप धन लेना ॥टेक॥
करम ठग सब निवारणको, सही जिनराज हैं मेरे ।
उन्हींकी शरण ले करके सकल आताप हर लेना ॥१

हरो संतापकी गठड़ी न इसमें सार पाओगे ।
जगत जंजालसे टलना इसीमें ज्ञान धन लेना ॥२
सुखोदधि सार निज आतम, वही सब द्वन्द्वका हर्ता ।
उसीके सार वर्तनमें खुशीसे निज चमन लेना ॥३

पद.

आज दृग देखे जिनवर रे ।
मिटी मेरी बाधा भव २ की, निरख सुख घर रे ॥ आज० ॥
शांति छवि ध्यानैक तानमें लीन स्वरस भर रे ॥ आज० ॥
बोधि निधान समाधि सार रच, बैठे गुणधर रे ॥ आज० ॥
सर्व भर्म नो कर्म कर्म, बिन राजत भवहर रे ॥ आज० ॥
कब होऊं इनसे वैरागी-त्याग नेह घर रे ॥ आज० ॥
सुखसागर वर्धनके कारण, जगमें शशि कर रे ॥ आज० ॥

पद.

कर मन निज कल्लोल अपार, त्याग २ सब मोह विकार ॥ टेक ॥
बहुत बार इन राग द्वेषने, कर दीना तो हे खार ।
अबतो उठ ले ध्यान खडग को, इनका कर संहार ॥ कर० ॥
कर्म फंद के फंद विकट हैं, इनमें आतम सार ।
पड़कर भूल रहा निज पद को, भोगत भव दुःख भार ॥ कर० ॥
असत भूमिका तजकर सतमें, आ जा मन इकबार ।
मोक्ष महल पहुंचन के कारण, खुल जावे निज द्वार ॥ कर० ॥
संयम साबुन लेकर भाई, धोओ वस्त्र पसार ।
भाव कालिमा दूर होत ही, झलके उज्वल धार ॥ कर० ॥

सुखसागर के वर्धन कारण, जिन ध्वनि चन्द्र सुमार ।
ताकी सेवत वेवत निजपद, छुटे दुःख संसार ॥ ४० ॥

गज़ल.

जगत जंजाल से हटना सुगम भी है कठिन भी है ।
परम सुख सिन्धु में रहना सुगम भी है कठिन भी है ॥ टेक ॥
है कायरता बडी जामें उसे बसकर स्ववीरज से ।
निजातम भूमिमें जमना सुगम भी है कठिन भी है ॥ १ ॥
परम शत्रु हैं रागादिक इन्हे दिल से हटा लेना ।
स्व संविचिका अनुभवना सुगम भी है कठिन भी है ॥ २ ॥
करोड़ों भाव आ आकर, मनोहरता बता जाते ।
न इनके मोह में पड़ना सुगम भी है कठिन भी है ॥ ३ ॥
कर्म जड है न कुछ करते चले जाते स्वभाव से ।
अबंधक शाश्वता रहना सुगम भी है कठिन भी है ॥ ४ ॥
कषायों की जलन जिसके नहीं तनको जलाती है ।
चिदानंद पिंड सुखसागर सुगम भी है कठिन भी है ॥ ५ ॥

पद.

सबको करता प्रणाम जिन स्वधाम पायो ।
परका बहु राग रंग संग सब हरायो ॥ टेक ॥
एक मेक है अपार, गुणधारी गुणको विचार ।
अनुपम आनंद कंद दर्श शुभ लहायो ॥ १ ॥
मिथ्या भ्रम ताप माहि, पायो नहिं शांत छांहि ।
अक्षनकी चाह दाह, स्वात्मको जलायो ॥ २ ॥

मोहके पछाड़ोंसे, भवदधिमें बहु रुलाय ।
नौका निज ज्ञान लेय कर विवेक आयो ॥ ३ ॥
शिव तट सच तटनि सार, निश्चल हरता विकार ।
सुख उदधिको भंडार, हृदयमें बनायो ॥ ४ ॥

गज़ल.

करम हरता श्री जिनराजको दिलमें सुमर ले मन ।
भर्मकी चद्दरोंको दूर करके निज सुमर ले मन ॥ टेक ॥
है संतापी वही आपी, भव कीचका हर्ता ।
इसीके भेद अनुपमको स्वपर चिंतन सुमर ले मन ॥ १ ॥
हर्ष और शोककी नदियां जहां नहिं बह रही कोई ।
समुंदर आत्म चिंतनका अरे प्राणी सुमर ले मन ॥ २ ॥
जो है शक्ति अनूपम आपमें विश्राम करती है ।
उसीके जोरमें पडकर निज अनुभवको सुमर ले मन ॥ ३ ॥
न है रोगी न है द्वेषी मेरा स्वामी है आनंद मय ।
है सुखसागर वही सुन्दर उसे घटमें सुमर ले मन ॥ ४ ॥

पद.

कर निज सुमरण भाई, क्यों परमें ममता उपजाई ॥ टेक ॥
चिन्मय मूरति अकल विराजे ज्ञान शरीरमें है अकलाई ।
जो सेवक हो आप धामका देखत २ चित न अघाई ॥१॥
आपी ध्यानी आपी ध्याता आपी ध्येय परम सुखदाई ।
है अखिन्न निश्चय पद स्वातम नहिं जामें कोई आकुलताई ॥२
तत्व विचार किये पावत है, करण लब्धिकी उत्तमताई ।
फाटक खुले दरश निज पावे, अनुभव रसकी निर्मलताई ॥३॥

कर्ता धर्ता मुक्ता नाहीं जो हैं निज जैसो ठहराई ।
सुख सागर पावे निज समता, विलसे अनुभव आनंद माई॥६॥

गज़ल.

निकट निज रूपमें समता उसे तू दूर क्यों ढूंढे ।
तेरा चेतन तुझहीमें उसे क्यों नहिं अभी ढूंढे ॥ टेक ॥
न जिस बिन है सुखी कोई जगत दुख कीचमें डूबा ।
फंसा जो परकी उलझनमें वह निज आतमको क्या ढूंढे ॥ २ ॥
है परदा कर्मका माना मगर किसने उसे डाला ।
तुही कर्ता है कर्मोंका तू पर कर्तृत्व क्या ढूंढे ॥ १ ॥
बिरानेसे करी मिल्लत इसीसे हो गया वैसा ।
तु बस अब मोहको तज दे, तू परमें आपको ढूंढे ॥ ३ ॥
अगर तू आपको जाने, बने तू आपसा आपी ॥
सुखोदधिमें हो, तन्मयता इधर जो आपको ढूंढे ॥ ४ ॥

गज़ल.

क्षमा हो मेरे द्वेषोंकी यही अब इन्तज़ारी है ।
श्री जिनके चरण कमलोंमें यह विनती हमारी है ॥ टेक ॥
मैं अपराधी अनादीका, करी हिंसा मैं नित अपनी ।
निजातम लब्धिकी शक्ति, अहिंसा अब सम्हारी है ॥ १ ॥
भुलाकर निज विभूतिको, तरसता मैं रहा परमें ।
रत्नत्रय स्वात्म लक्ष्मीकी, कृपा चितमें विचारी है ॥ २ ॥
न मतलब राग द्वेषोंसे, न है कर्मोंका अब आदर ।
पिछाने शत्रु हैं इनको, घृणा इनसे अपारी है ॥ ३ ॥
शिवा देवी मनाऊंगा, जगतसे दिल हटाऊंगा ।

मैं न्योछावर हो जाऊंगा, भगत जनकी वह प्यारी है ॥ ४ ॥
है सुख सागर भरा घटमें, नहीं कहीं दूर जाना है ।
उसीमें ही नहाना है, वहीं निज तत्व भारी है ॥ ५ ॥

पद.

निज पदमें रहना, रे भाई निज पदमें रहना ।
क्यों पर पदमें लोभ मचाया, क्यों भव दुख सहना ॥ रे भा० ॥
आगम पढ़त पढ़त दिन वीते, पर निज तत्व न रमना ।
मोह जालसे छुटत न कोई क्षण, अस नाता नहीं घरना ॥ रे भा० ॥
निज कुटुम्ब निज साही होवे, सो चेतन विन अनना ।
निज विभूति निज मांही भरी है, सो लेले पर तजना ॥ रे भा० ॥
पूजा जप तप व्रत उपवासा, जिस विन कोई महत ना ।
सो निज अनुभव निजमें लखके, क्यों पर ममता करना ॥ रे भा० ॥
सुख समुद्र निज माहिं भरा है, सो लख उर मत डरना ।
आप डूब वाहीके अंदर, निज अनुभूति सुमरना ॥ रे भा० ॥

भुजंगी छंद.

मुझे दृष्टि आतम सुहाई हुई है, मेरे तनमें मनमें जमाई हुई है। तेरा ध्यान अनुपम जो पाता खुशी हो, उसीके हृदयमें सुनाई हुई है ॥ नगर द्वार, वनमें सकल थान ढूंढ़ा, छटा उस प्रभुकी जो छाई हुई है । सभी रंग देखे न वह रंग पाया, कि जिस रंगमें जां रंगाई हुई है ॥ सकल तत्व निर्भय सभा बांध रहते, जहां गुण अगमकी रुगाई हुई है ॥ जो आनंद गुणमें सदा तृप्ति रहते, उन्हीको परम लब्धि आई हुई है ॥

गज़ल.

सकल श्रुत बोधको जानो, मिटा दो सारी दुविधाको ।
निकल निर्मल शुद्धातमको, भजो हरते जो कुविधाको ।टेक॥
मगन हो मोह मायामें, भुलाया है गा सत ज्ञानं ।
लखे जो कोई सदरूपं, वह पावे आप सुविधाको ॥१॥
जो चंदनवृक्षकी सेवा, सुगन्धि नित्य देती है ।
परम अमृतके कूएंसे, निकालो पी लो सुधुधाको ॥२॥
चढ़ो उद्यमके घोड़ेपर, करो परमादका चूरन ।
जो चलते हैं वह बढते हैं, वह पाते हैं सुमतिधाको ॥३॥
स्वदेशी ही सदा रहकर के करना है बहिष्कार ।
जो अपने धनमें लय होता, न करता है वह हठधाको ॥४॥
मगन हो, मस्त हो हरदम, सभी चिन्ता जला दीजे ।
त्रिलोकीको हृदय रखकर, के देखो पद्धाको ॥५॥

गज़ल.

लख लख यथार्थ रूपको, रे चेतना मोही ।
विपरीत मार्ग चलके बना, आप क्यों द्रोही ॥ टेक ॥
डोला अनादि भव विपन, न ख्याल कुछ किया ।
पर्याय पाय दु:खदाय, बन गया कोही ॥१॥
करुणाको धार, शोक न कर, देख कौन है ।
दर्पणमें अपना रूप, झलकता सदा वोही ॥२॥
है शब्द अर्थ शास्त्र मथनमें समझ बडी ।
अनुभव प्रकाश होय समझ, है सफल मोही ॥३॥

कर कर प्रकाश आप, आश छोड़ मत कभी ॥
होके मगन निजात्म बीच, रहिये अलोही ॥४॥

गज़ल.

जगत भ्रम जाल में पाया, उसी ने तो पता जगका ।
जो लेकर ढूंढता दीपक, निजानंद रूप श्रावगका ॥ टेक ॥
जिस घरमें आप रहता है, वहीं अंधेर छाया है ।
मगर अवतो उजाला है, दिखा जब भेद निज मगका ॥ १ ॥
न कोई ह्रस्व नहिं दीरघ, सभी अक्षर हैं एकीसे ।
यही श्रुत ज्ञान है दर्शित, मिटाता ज्ञान पातक का ॥ २ ॥
जो कोई भाव श्रुत जगमें, है एकी भाव नहिं अंतर ।
उसे पढ़कर चतुर होकर, हराता मान घातक का ॥ ३ ॥
ठगाता है नहीं कुछ भी, विषय सुख जानकर द्रोही ।
मगन होता है आपी में, जो पाता भेद चातक का ॥ ४ ॥

गज़ल.

क्या लिखूं चलती नहीं है, यह कलम दरबार में ।
देखकर सामान सब सम, प्रेम के बाज़ार में ॥टेक॥
पत्ता भी नहीं हिलता, नहिं शब्द पड़ता कानमें ।
भूपति का ताव छाया, हर दिले व्यापार में ॥ १ ॥
पांचों मंत्री अपना अपना, सर झुकाए हो रहे ।
चार जो योद्धा बड़े ठाड़े हैं, अपनी हार में ॥ २ ॥
देश पर है ध्यान राजा का, बखूबी लग रहा ।
रक्षा जो करता सभी की, ज्ञान के अधिकार में ॥ ३ ॥

हो मगन निज आप गुणपर, गुण का नहीं संयोग कुछ।
सब को देखा एकसा, अनुभव मई संसार में ॥ ४ ॥

गज़ल.

करम कर्त्तार जो कोई, वही उस फल को पावेगा।
न मतलब है मुझे कुछ भी, न कोई पास आवेगा ॥ टेक ॥
कोई कहता बंधे हो तुम, कोई कहता खुले हो तुम।
जो बंधता है वह खुलता है, न तन मेरा बंधावेगा ॥ १ ॥
किसी परपंच में उलझा, इसीसे हो रहा पागल।
जो उलझा है वह सुलझेगा, वह पागलपन मिटावेगा ॥ २ ॥
तेरी छवि मोहने वाली, मेरे तन मनको खेंचे है।
जिसे खेंचे खिचेगा वह, न मेरा गुण खिचावेगा ॥ ३ ॥
जो करता हर्ष रागी हो, वही दोषी हो रोता है।
सदासे हूं मगन आपी, न कोई दुख बनावेगा ॥ ४ ॥

गज़ल.

जगतमें ज्ञान माणिकको, लहै जो ध्यानमें पूरा।
करे निश्चलही उपयोगा, वही शूरोंमें है शूरा ॥ टेक ॥
नहीं डरता है भव वनमें, कोई वनमें, कोई गर दुष्ट दुःख व्यापे।
कदम रक्खा उसी पथ पर, जिधर नहीं कूरा ॥ १ ॥
ध्यान अपनी लगा करके, इसी वस्तुकी तृष्णा में।
कोई निन्दो कोई दम दो, नहो निज कामसे दूरा ॥ २ ॥
बनाई ढाल साहसकी, इसीसे विघ्नको रोके।
पहनकर वस्त्र धीरजका, चला जाता है गुण पूरा ॥ ३ ॥

पहुंचकर रत्न नगरीमें, जो देखा ज्ञान माणकको ।
हुआ आपी मगन कैसा, निकल ज्योतिमें पुर नूरा ॥ ४ ॥

राग.

छा रही दिल पर मेरे है, पर समयकी कुछ झलक ।
जिससे तड़फे है कलेजा, सुखसे नहीं लगती पलक ॥ १ ॥
कोई करवट भी यह तन पाता नहीं कुछ चैन है ।
बस विषयकी चाहमें, जलता रहे दिन रैन है ॥ २ ॥
है कहां वह मंत्र जो, इस तंत्रकी औषधि करे ।
है कहां वह मित्र जो कुछ बोध दे बोधि करे ॥ ३ ॥
दास जो हैं पर समयके दुख उठाते हर घड़ी ।
उनकी आखोंहीसे वहती आसुओंकी नित झड़ी ॥ ४ ॥
जो विचारे इस तरह वह लब्धिको पावे सही ।
क्षय है उपशम और विशुद्धि देशना लब्धि कही ॥ ५ ॥
बस प्रयोगी पाके पहुंचे कर्ण लब्धिके निकट ।
झट पछाडे मोहनीके तीन बेटे जो विकट ॥ ६ ॥
चार मंत्री आप ही मुंह मोड़ कर छिप जांए तब ।
निज समयकी तब रुचि पावे सुधी होकर सुढब ॥ ७ ॥
मुहूर्तोंके बाद पौने दो घडी आराम हो ।
भूल जावे जग असत् आपेमें तब विश्राम हो ॥ ८ ॥

गज़ल.

तू है दिलका अमी स्वामी, तुझे मैं देख कब पाऊं ।
बिना तव दर्श सुख करके, नहीं मैं चैन हिय लाऊं ॥ टेक ॥
न हैगा रूप कुछ तेरा, न हैगा वर्ण कुछ तेरा ।

न हैगी गंध कुछ तुझमें, नहीं तुझको परश पाऊं ॥ १ ॥
तू जगसे तो निराला है, मगर गुणका शिवाला है।
तेरे मंदिरमें मैं जाता, जो मैं सब कर्म नशवाऊं ॥ २ ॥
दरशका जो कि भूखा है, उसे नित शोच है भाई ।
तेरी चिन्तनकी शक्तिमें, सही सब रूप झलकाऊं ॥ ३ ॥
मगन हो आपके रूपमें नहीं कुछ देरमें लाऊ।
मिटाऊं सर्व आपत्ति, तुझे हिरदेमें बिठलाऊं ॥ ४ ॥

गजल.

मुझे गुण ग्राम पहुंचनकी, लगी तृष्णा हमेशासे ।
कोई ऐसा दया दयानिधि है, बतावे मार्ग निज तहसे ॥ टेक ॥
कलप भय द्वेष कुलटाई, नहीं जिस मां समाती है ।
क्षमा सत ज्ञान संयम तप, विनय है सौच है इकतासे ॥ १ ॥
सभी गुणका शिवाला है, वही साचा मोक्ष आला है ।
तरसते हैं उसी बिन हम, न रह सके हैं प्रभुतासे ॥२॥
जो सुख सागर समाता है, उसीमें लोप होता है ।
वहीं निज गोप कर रहना, यही माता है समतासे ॥ ३ ॥

पद.

कहे कौन समताकी बातें, जो जाने नाशै निज घातें ॥ टेक ॥
गणी मुनी सब याहि नमावे, याको दर्श मिले सुख पावें ॥ १ ॥
जिन जिन याकी शरण लही है, तिन भव अर्णव नाव गही है ॥२॥
तीर्थंकरने प्रीति करी है, सब तिय तज शिव नार वरी है ॥ ३ ॥
दया क्षमा विद्या सब आई, समताके पगमें लपटाई ॥ ४ ॥
ध्यान धारणा या बिन नाहीं, या बिन नहिं समाधि हिय माहीं ॥५॥
जो यासे मन नेह बढावे, होय मगन भव दुख नहिं पावे ॥ ६ ॥

गज़ल.

निजानन्द स्वादके कारण, मैं आपेको लखाऊंगा ।
जगत जंजालसे हटकर, द्विधाकी गति मिटाऊंगा ॥ टेक ॥
धरी हैं काय बहुतेरी, न पाया रूपको अपने ।
श्री सत गुरुके वचनोंमें, मैं अब श्रद्धा धराऊंगा ॥ १ ॥
अकामी लोभ त्यागी हो, परिग्रह फांसको हर कर ।
मैं चित अपनेको निर्मल कर, उसे दर्पण बनाऊंगा ॥ २ ॥
किसीको जान कर अच्छा, किसीसे द्वेष कर बैठे ।
यह आदत दूर कर अपनी, सु समतामें रहाऊंगा ॥३॥
मगन हो आत्म दर्शनमें, दरश पाऊंगा सुखकरका ।
वही है अब्ध ज्ञानामृत, जहां हिरदे तराऊंगां ॥४॥

पद.

कर्म पंकोंके क्षालन काजा, आज बाकू गंगा बह निकली ॥टेक॥
क्यों अनादि मलीन जगत जन, भ्रमत विकल्प गली ।
आधि व्याधि नित सह्य करीनो, पुण्यघड़ी उछली ॥आ०॥ १
पर परणति अलसाय रहे थे, मुदी थी ज्ञान कली ।
तीन रतन दब रहे थे कीचमें, दुविना सर्व टली ॥आ०॥ २
गौतम गणधरके मुख होके, द्वादश धार चली ।
वचनामृत जलकर पूरण हो, भव्यन ओर ढली ॥आ०॥ ३
गात्र प्रक्षालित करत आपना, कर्म कलंक दली ।
शुद्ध भयो निज रूपको पायो, देख्यो ज्ञान थली ॥आ०॥ ४
अनुपम निर्मल सुख अबाधित, पायो आतम बली ।
वीर हिमाचल चरण शरण में, मगन मती गतली ॥आ०॥ ५

ज्ञानानंदी गजल.

जो आनंद हैगा निज घटमें, नहीं परमें प्रगट होता ।
जो ज्ञानी है निजानंदका, नहीं सुख दुख उसे होता ॥ १ ॥
करोड़ों रोग और व्याधि, अगर तन मनमें आती हैं ।
निराश होकर चली जातीं, असर उस घटपे नहीं होता ॥२॥
कहां सुवरण कहा लोहा, रतन अर कांचका अंतर ।
कहां है चेतना सुखमय, कहां जड रूप है थोता ॥ ३ ॥
जो जड़में मोह करते हैं, वही भवमें विचरते हैं ।
उन्हींको राग द्वेषोंमें, क्षणिक दुख सुख निकट होता ॥ ४ ॥
जो अपनी निधिका स्वामी है, उसे क्या और धन चहिये ।
वह सुखसागर मगन रहके, सुज्ञानानंद मय होता ॥ ५ ॥

गजल.

खज़ाना है यां भावोंका, इसे गर कोई दिखलाता ।
जो है ज्ञानी वो समदृष्टी, वो चारितवान कहलाता ॥
अनेकों भाव पा पा कर, जगत जन उलझे जाते हैं ।
जो है एक भाव सुलझनका, उसे विरला कोई पाता ॥ १ ॥
जो चद्दर हैगी भावोंकी, उलटना उनका है मुश्किल ।
मगर जिनवच श्रवण पुन पुन, कुपरदा सब निकल जाता ॥२॥
कोई उपशम है कोई क्षायक, कोई दोनों में मिलकर रह ।
अशुभ भावों की गठरी कर, निज अग्नि से जला पाता ॥ ३ ॥
जो है शुभ भावो के परदे, तिन्हें भी नित हटाता है ।
जो निर्मल शुद्ध उपयोगा, उसे आगे सदा लाता ॥ ४ ॥
जो फिर शुभ के परदे, थका थक चलके आते हैं ।

न कुछ चिढ करके समता से, उन्हें धीरे से हटवाता ॥ ५ ॥
कभी निज ध्यान पावक में, सभी शुभ भाव जल जाते ।
निराले शुद्ध भावों में, तब अपना आप ठहराता ॥ ६ ॥
निधी पाकर सुखी होकर, न जगकी ओर देखे है ।
सुखोदधि में ही तन्मय हो, मुकति नारी को वर पाता ॥ ७ ॥

होली.

अरे मन आतम भाई, भूले क्यों चतुराई ॥ टेक ॥
सब विधि नाट नाच कर जगमें, विपता अधिक उठाई ।
राग अंध हो ढूंढत डोल्यों, सुख गती नहि पाई ।
वृथा निजरोग बढाई, भूले क्यों चतुराई ॥ १ ॥
चोर प्रमाद, किया बहु आदर, निज निधि सर्व गमाई ।
शुभ उद्यम को आलस करके, अशुभ में प्रीति कराई ।
कुमग चाल्यो हरखाई, भूले क्यों चतुराई ॥ २ ॥
ज्ञाता दृष्टा अरु वैरागी, आनंद मय कहलाई ।
पर वस्तु जो, भिन्न सरासर, तामें लोभ जमाई ।
यही तेरी मूरखताई, भूले क्यों चतुराई ॥ ३ ॥
सत गुरु तोकूं कहत टेर अब, जान निजानंद राई ।
मगन होय निज सुखदधि भीतर, चिन्ता सर्व नशाई ।
रहो निजरूप समाई, भूले क्यों चतुराई ॥ ४ ॥

गज़ल.

हमेशा मेरे दिल में भाये हुऐ हो, समाये हुऐ हो, रमाए हुए हो ।टेक।
तुझे दर्शकर कर मैं खुशरंग होता, मेरे शत्रुओं को भगाए हुए हो ।१।
विषय चोर निध ज्ञान को हैं चुराते, उन्हें दूर से ही डराये हुए हो ।२।

जो भव वन के वृक्षों में हरक्षण भटकता, उसी मन कपी को बंधाए
हुए हो ॥ ३ ॥
करा दान सम्यक् रतन का दयाकर, सुखोदधि में निजको डुबाए
हुए हो ॥ ४ ॥

पद.

गुरुनाम भजन कर बावरे, क्यों वृथा गमावे ।
वहुत पुण्य कर मिली अवस्था, वार २ नहिं पावे ॥ टेक ॥
पंचा चार चरत निस्पृह हो, पर आचरण करावे ॥ १ ॥
निश्चय चरण करणके कारण, व्यवहृत चरण दिढावे ॥ २ ॥
ब्रह्माचरण शुद्ध निज करणी, तामें मन हुलसावे ॥ ३ ॥
आतम धरमको पाठ पढ़त नित, परको पाठ पढ़ावे ॥ ४ ॥
साधु निरंजन वहु गुणधारी, आपहिं आप सधावे ॥ ५ ॥
सुखसागरमें मग्न गुरु नित, याद करे सुख पावे ॥ ६ ॥

शैर.

सत्संग है असंग, अगर ज्ञान सम मिले ।
सब भेद ज्ञान राख रास, एकमें मिले ॥ टेक ॥
रहती वचन प्रणालिका, इक रूपमें चली ।
यद्यपि सभी अलग हैं, पर हैं सबमें सब मिले ॥ १ ॥
चरचा हरएककी है, निराले ही ढंगपर ।
फल देखिये तो सबके सबोंसे है जा मिले ॥ २ ॥
जाहरमें देखिये तो, समां रागका छाया ।
पर वीतराग ज्ञान ध्यानमें सभी मिले ॥ ३ ॥
संयम अलग अलग है, अलग नेम आखड़ी ।

पर संयमी सभी हैं, एक ध्यानमें मिले ॥ ४ ॥
हैं तीन रतन मस्तकों पे, सबके चमकते ।
जिनके प्रभा समुद्रमे, सुख आपका मिले ॥ ५ ॥
जो चाहें सुधरना, उन्हें सत्संग यह लेना ।
मुक्तिका विमल धाम सुगम आपमें मिले ॥ ६ ॥
सुख दधि है तीनों लोक, अगर देख ले कोई ।
सत्संगका प्रभाव, हरएक थान पे मिले ॥ ७ ॥

गज़ल.

सुखद संसारमे वोही, जो चित कोमल बनाता है ।
वही है मंत्र जग सारा, जो पत्थरको वहाता है ॥ टेक ॥
अनादिसे कठिन पड पड, हुआ अज्ञानमे पूरित ।
जो सद्‌गुरु शीख देते है, न कुछ मनमें सुहाता है ॥१॥
हुआ जब पाप रस कमती, सुना जिन वेन सुखकारी ।
करी दृष्टिमें जिन मूरत, समय सुधरनका आता है ॥२॥
लगाया चित शुभ मगसे, हुआ भय पापसे भारी ।
किया घर्षण निजातमको, श्री जिन वेन भाता है ॥३॥
खुली जब आंख तीजी ता, अजब नाटक नज़र आया ।
त्रिलोकीका सकल चारित, सहज आपी दिखाता है ॥४॥
निजातम बीच अनुभवकी, कला इकदम उमड आती ।
मगन सुख दधिमें होना ही, परम कोमल वनाता है ॥५॥

पद.

अरे जिय छोड़त नाहीं यह ॥ टेक ॥
पर परणति लिपटाय रहा है, घर तन हृदय विवेक ॥ अरे० ॥

बार वार समझावत सतगुरु, कान धरत नहिं नेक ॥ अरे० ॥
जीरण तृणकी कुटी रहत जिय, जल जावे छिन एक ॥ अरे० ॥
निश दिन ताहीके संग रांचा, धोखा देत अनेक ॥ अरे० ॥
मोह गहलता भांग पिई है, देखे हरित हरेक ॥ अरे० ॥
भाग्य उदय छिन होश में आयो, देखे भिन्न प्रत्येक ॥अरे०॥
मोहनी मादक फिर चित ठानो, याद नहीं कुछ एक ॥अरे०॥

भजन.

सयम साधन कर मन मेरे, क्यों तन वृथा गमावेरे।
परमातम पद देख आप में, क्यों मन दुविधा लावेरे ॥ टेक ॥
दुर्लभ है नर तन शुभ इन्द्रि, आयु विपुल कुल श्रावक केरा।
जान जान निज घट में व्यापी, क्यों मन मोह बढावेरे ॥ १ ॥
कष्ट नहीं मन मोचन माहीं, जो हृदि ज्ञान रतन ठहराहीं।
स्वाद आपका वेद वेद मन, क्यों पर स्वाद बनावेरे ॥ २ ॥
शकर शिवहर दुखहर निजमय, अज अकलंकी परम धरम मय।
नाम रहित गुण अनुपम धारी, ताको क्यों न भजावेरे ॥ ३ ॥
निश्चय निर्भय निज रस धारी, एकाकी अविचल अविकारी।
शांतसुधा रस गर्भित सरवर, तामें क्यों न नहावेरे ॥ ४ ॥
दर्शन ज्ञान चरण मय साहब, आपी कारण कार्य मुसाहब।
राजत सुखदधि में निशवासर, ताकों क्यों न लखावेरे ॥ ५ ॥

गजल.

रहो निजज्ञान अनुपम में, जहा त्रैलोक्य का वासा।
झलकता है जहां सब कुछ, वही आनंद का रासा ॥ टेक ॥
किया मैंने सफर जगका, न पाया उससा है कोई।

उसीने यह बता दिया, करो निज ज्ञान हुल्लासा ॥ १ ॥
यह क्षण भंगुर जगत सारा, सभी झूठा है व्यवहारा ।
जो निश्चय है वही सत् है, उसीके बन रहो दासा ॥ २ ॥
जिधर देखा उधर पाया, उसी को जो कि है निर्मल ।
करी दृष्टि निपट निश्चय, मिला एक रूप सुख भासा ॥ ३ ॥
जो हैगा आत्मरस अनुभव, वही एक सुख निराला है ।
मिला उसको सुखोदधि में, हुआ है उसका नितवासा ॥ ४ ॥

गज़ल.

परम आतापकी हर्ता, भजन माला पहरले मन ।
उतारो वस्त्र बदरंगी, शुभग वस्तर पहले तन ॥ टेक ॥
जो है संयोग दुनिया के, वहां नित खेद औ भ्रम है ।
न पाता चैन यह जियरा, कभी होता न सुख आसन ॥ १ ॥
न जिसमें राग औ सुख है, न चिन्ता जो न व्याकुल है ।
जनमना है न मरना है, सदा आनंद मय चेतन ॥ २ ॥
समयसार अरु परमातम, त्रिलोकीनाथ अभयातम ।
परम निर्मल सुभग सुन्दर, हैं मोती मोहते भविजन ॥ ३ ॥
कषायोंका जो मल काला, न जिसको पर्श पाता है ।
रंगे अनुभवकी रंगत में, यह सोहे हैंगे चित श्वासन ॥ ४ ॥
यह दोनों सोहते तन मन, जहां छाई है उपशम गंध ।
निराला रूप है अनुपम, यह चित हरदम करे दर्शन ॥ ५ ॥
उसीमे प्रीति कर लय हो, सभी दुविधा निकल जाती ।
परम संयोग होने से, सुखोदधि लब्ध हो तारन ॥ ६ ॥

पद.

अनुभव रस पी लीजे मनुवा, क्यों मन रोग बढाया हेरे ।
तनधन जोबन थिर न रहाई, क्यों चित में बौराया हेरे ॥टेक॥
पंच रसनकी खोज करतही, निजरस काहे भुलाया हेरे ।
जा रस में जगरस सब व्यापे, ताहि न चित मे ध्याया हेरे ॥१॥
तृष्णा खाज उठे क्षण क्षण में, ज्यों ज्यों तिसे खुजाया हेरे ।
चाहत चाहत चैन न पावे, आखिर जनम गंवाया हेरे ॥ २ ॥
संतोषामृत ते शुचि कीने, मनको मैल मिटाया हेरे ।
बेपरवाही जात फकीरी, घर घर मन उमगाया हेरे ॥ ३ ॥
परमातम सच्चे साहब से, अपना मोह जगाया हेरे ।
सुखनिधि में डूबत निश वासर, परपद दाह बुझाया हेरे ॥ ४ ॥

गज़ल.

स्वभाव निश्चल करो हमेशा, जो होवे आनंद धाम निज में ।
पडे क्यों सोते हो नींद गहरी, यह देखो राजे त्रिलोक निज में ॥टेक॥
हर एक जा पर हर एक देखा, न पाया ऐसा कि जैसा वह है ।
मगर नजर को जब फेर लीया, सभी को देखा समान निज में ॥१॥
जगत में काटे के झाड भी है, और मनको रोचक पदार्थ भी हैं ।
मगर जो देखा सम्हार करके, दिखाते एकी है रूप निजमें ॥२॥
जगत बदलता है रूप अपना, हर एक क्षण में हर एक क्षण में ।
न जावे कुछ भी न आवे कुछ भी, तमासा बेशक बना है निज में ॥३॥
जो जाल बांधे वही फंसेगा, है देखो कैसा विचार जगमें ।
न जावे बांधे न कुछ फंसा है, है जैसा वैसा विचार निज में ॥४॥
बनाओ सीढ़ी सुज्ञान की अब, चढ़े चलो दम बदम में तुम अब ।

जो सार सरवर है निज सुधाका, सदा बहे एक सार निज में॥५॥

गजल.

मुझे गुण गान करने की, लगी लौ जो कि सुखदाई ।
निवारे हैं भरम अपना, कि जिस विन जगत दुखदाई ॥ टेक॥
करम अंवर के साएमें, विराजे है जो जन भवके ।
न अनुभव आप पाते हैं, न वेदे हैं मुकति राई ॥ १ ॥
अनादि जिसको भूले थे, औ जिस विन जगमें झूले थे ।
उसीके रूपकी महिमा, गुरुमुख से है सुनपाई ॥ २ ॥
न हम कर्त्ता न हैं न धर्त्ता, न है सुख शापके भर्ता ।
न खोते हैं न पाते हैं, न हानि है न फलदाई ॥ ३ ॥
जगत एकत्वको ध्याना, यही सुन्दर है गुण गाना ।
समाधीका पता पाना, यही आनंद ठकुराई ॥ ४ ॥
सभी व्यवहारको त्यागा, सदा निश्चयमें चित पागा ।
सुखोदधि तट अमल पाकर, मिटी भव भव की जड़ताई ॥ ५ ॥

गजल.

करम फंदेसे, दिल छुड़ाना पडेगा ।
जो दिलका प्रभू उसको ध्याना पड़ेगा ॥ टेक ॥
तू आकुल जो होता, निराकुल न रहता ।
इसी आदतको अब मिटाना पड़ेगा ॥ १ ॥
जो सम्यक्त सिद्धि, वही सत्य वृद्धि ।
उसीमें चरणको विठाना पड़ेगा ॥ २ ॥
जो है ईश कोई, वही दास हैगा ।
जगत भेदका मल, वहाना पडेगा ॥ ३ ॥

सकल ज्ञेयको, ज्ञानमें धार करके ।
पृथक् गुणको रिझाना पड़ेगा ॥ ४ ॥
जो निश्चय है सत्य, उसीसे हो तन्मय ।
सुखोदधिमें, नित प्रति नहाना पड़ेगा ॥ ५ ॥

पद.

दुविधा अपार जगतकी, इस आन परिहरूं ।
मैं थाम आप आपमें, निज आपमें रमूं ॥ टेक ॥
गत कालमें किये थे मैंने पाप घनेरे ।
तिनको तो मिथ्या जानके, निज भावमें क्षमूं ॥ दुविधा० ॥
रहना है सावचेत, आगामीके वास्ते ।
तन मन वचनको नित्य शुभ स्थानमें धरूं ॥ १ ॥
जो आप शुद्ध बुद्ध निराकुल औ निरावर्ण ।
सत वंदना त्रिकाल द्रव्य भावसे करूं ॥ ३ ॥
है नित्य निराबाध ज्ञान सार उसीका ।
मुनि श्रुति करें हमेश, मैं भी गुणको वरणवूं ॥ ४ ॥
तज राग द्वेष ज्ञान स्वसवेद धारके ।
समता सुधाके मिष्ट अमल रसको पय करूं ॥ ५ ॥
जिसके अनादि ख्यालने भव बीच भ्रमाया ।
तिस कर्मको निजात्मसे मैं भिन्न अनुसरूं ॥ ६ ॥
रख कर समाधि भाव ध्यान धारणा विमल ।
सुखदधिको पाके नित्य मगन ताहीमें रहूं ॥ ७ ॥

होली.

अरे मन होली मचाई, खेलत चेतन आई ।

सुमति रानी सखियन संग ले, ज्ञान सुरंग भराई ॥
डालत चेतनके तन ऊपर, भवकी गंध मिटाई ।
हुए हर्षित चिदराई, अरे मन० ॥ १ ॥
सत्य गुलाल अबीर विराग, छिड़कत धूम मचाई ।
समता आंगन रंगमें भिगोया, ध्यान छटा प्रगटाई ॥
ध्वनि सोहं की सुनाई ॥ अरे मन ॥ २ ॥
सुमति तियाने प्रेम बढाया, कुमति नारि नशवाई ।
अनुभव राज प्रभुको दिलाया, भूल अनादि मिटाई ॥
भए दोनों सुखद ई ॥ अरे मन० ३ ॥

गज़ल.

दुख द्वंद्वको विसार निजानंद पद धरो, करुणा कटाक्ष हर घड़ी हर एक पे करो। टेक। नहि क्रोध लोभ मान कपटमें स्वपद पगो, तज रागद्वेष सैन वीतराग गुण वरो ॥१॥ सुज्ञान विमुख कार्य जो कोई भी कर धरे, उसके अज्ञान रूपमें अपनी दया करो॥२॥ जो कार्य ज्ञान मार्गसे नहि होय विरोधी, शिक्षाके बीज है इन्हे ग्रह कर कृपा करो ॥३॥ हैगा अहिंसाधर्म तुम्हारा ही सर्वथा, आरूढ उसपे रहनेकी निजपर मया करो ॥४॥ निज रस बिना अनादि तृषातुर यह हो रहा, उस रसका करके दान अमर इसको अब करो ॥५॥ सुखदधि विशाल है अपार ज्ञानरस भरा, उसमें नहाके कर्म मल अपने सभी हरो ॥६॥

होली.

अरे भव बीच अनाड़ी, क्यों ग्रही पर लुगाई । टेक
मोह राय जाके पति दुर्धर ताकी है यह भिजाई । ज्ञान

सुधन लूटनके कारण, तेरे ढिग यह आई, तुझे भवमें भरमाई ॥१॥ क्यों०॥ सुमता तेरी जो थी प्यारी तुझसे दी है छुड़ाई ॥ अपने रंगमें तोको रंगकर, भव दधि माहि डुबाई, तेरे संग कीहै बुराई ॥ २ ॥ क्यों० ॥ पांचो इन्द्रीको विह्वलकर, तृष्णा अधिक बढ़ाई। कर पैदा अनंत रोगनको, चिन्ता जाल जगाई, यही नित्य प्रति दुखदाई ॥ ३ ॥ क्यों० ॥ छोड़ छोड़ याकी संगतिको, गर निज चाहे भलाई ॥ जो तेरे बिन बिलख रही है, क्यों न उसे चित लाई। जो है तुझको सुखदाई ॥ क्यों० ॥ ४ ॥ वाके साथ कर प्रीति अखंडित, हो प्रकाश चिदराई। पावे अमल अगाध सुखोदधि, नहिं जहा कोई बुराई ॥ वहीं निज रूप लखाई ॥ क्यों० ॥ ५ ॥

गज़ल.

परम कल्याण भाजनमे, स्वरस अपना रखाया है।
न पर पात्रनकी तृष्णा है, न मन उनमें जमाया है ॥ टेक
करी मैंने बहुत कोशिश, कि मैं निज ज्ञानको छोड़ूं।
लही पदवी निगोदीकी, तदपि नहि चित् गमाया है ॥ १ ॥
गुणी बिछुड़े नहीं गुणमे, यह अद्भुत प्रीति पाई है।
इसीने लोककी चीजों, में थिरपनको रमाया है ॥ २ ॥
लहा नर जन्म सुखकर यह, है भेद ज्ञानको पाया।
जो अपना था वह अपनाया, सभी परको भुलाया है ॥ ३ ॥
मगन हो अपने ही रसमे, परम स्वतंत्रता पाई।
यदपि कर्मोके अंदर हूं, तदपि सुखदधिको पाया है ॥ ४ ॥

पद.

ध्यान दर्शनसे दर्शन लगाएँ जांयगे ।
चेतन प्यारे पे प्यार हम बढ़ाए जांयगे ॥ टेक ॥
जिसका करके निरादर हम हुए खराव ।
उसकी संगतिमें दिल हम रिझाए जांयगे ॥ १ ॥
हमने जाना न था है त्रैलोक्य प्रती ।
बाकी सेवासे अनुपम सुख पाए जांयगे ॥ २ ॥
कहीं अच्छा लखा कहीं जाना बुरा ।
समता दृष्टिसे भेद हम मिटाए जांयगे ॥ ३ ॥
मेरे कर्मोंकी गठरी है बोझा मुझे ।
अब तो क्षण क्षणमें हलकी बनाए जांयगे ॥ ४ ॥
जैसा भावै कोई वैसा पावै सोई ।
आज सुखोदधिके जलसे नहाए जांयगे ॥ ५ ॥

गज़ल.

मुझे ज्ञान सूरजके दर्शन दिखादो ।
प्रभू मोह तमको मेरे अब हटा दो ॥ टेक ॥
न है उष्णता जोश अनुभव उसी बिन ।
है आलस्य सर्दी इसे तो मिटा दो ॥ १ ॥
न गुण तरुकी वृद्धि कुछ होती है मुझमें ।
जो औगुणके कीडे लगे हैं छुड़ा दो ॥ २ ॥
थकन ताप भवके भ्रमणकी चढ़ी है ।
दरश चन्द्रमा शांत अमृत दिला दो ॥ ३ ॥
पठन ग्रन्थ दीपक अगरचे जलाता ।

परालम्ब क्षणमय यह आदत भुला दो ॥ ४ ॥
लखूं चन्द्र सुरज दोऊ एक थलमें ।
परम सुखोदधि मुझे तो डुबा दो ॥ ५ ॥

पद.

आतम बदरा छाया ॥ रे मन० ॥
अनुभव अमृत वर्षत सुखकर, भव आताप बुझाया ॥ रे मन० ॥
चित्त मोर आंगन विवेकमें, नृत्य करत हरखाया ॥ रे मन० ॥१॥
सम्यक दर्शन बीज अनूपम, हिरदय भूमि जमाया ॥ रे मन० ॥२॥
धर्म वृक्ष सर सब्ज हुआ है, पवन सुज्ञान चलाया ॥ रे मन० ॥३॥
शांत स्वास्थ्यमय छाया वाकी, भव भ्रम थकन समाया ॥रे मन० ॥४॥
या सुन्दर तरु बैठ मगन हो, शिव सुन्दर गुण गाया ॥ रे मन० ॥५॥

पद.

एजी मैंने आतम बाग लगाया ।
चिर इच्छुक था अमृत फलका, अवसर अब बन आया । टेक ।
डाल बीज सम्यक मनभूमि ज्ञान सुजल सिचवाया ॥१॥
धर्म वृक्षकी छांह दयामय, सत्य पुष्प महकाया ॥२॥
वामें विहरत पावत साता, दुख समा हटवाया ॥३॥
निज अनुभूति रानी संगमें, वाके रंगमें रंगाया ॥४॥
बाग अनूपम देखत देखत, निज आखिन सुख पाया ॥ ५ ॥
निज रस रसिया पक्षी आकर, सोहं शोर मचाया ॥ ६ ॥
मिष्ट ध्वनि सुन अंतर प्रगटे, भवका मोह नशाया ॥ ७ ॥
या उपवन की सेवा कर कर, अमृत फल नित पाया ॥ ८ ॥
जिन जिन सेया तिनफल पाया, अनुभव स्वाद मिलाया ॥ ९ ॥

पद.

सुनरे मेरे नेम पियरिया, तोरी लीधी हैगी शरनिया ॥ टेक ॥
अब मैं जाऊ कौन नगरिया, अरु मैं ढूंढूं कौन डुंगरिया ।
तेरे चरणा तजकर स्वामी, कैसे लहूं निज ज्ञान मुंदरिया ॥ १ ॥
भव भव मेरे पति हुए हो, नित किरपा करतार हुए हो ।
अब क्यों मोसे पीठ मरोडी, मैं नहि छोडूं तेरी डगरिया ॥ २ ॥
मुंदरी ज्ञान मई अति सुन्दर, जाको तरसत सखी पुरन्दर ।
दीजे दीजे नाथ कृपा कर, गुण चेरी कर लेव सवरिया ॥ ३ ॥
मोक्ष महलमें गर जाओगे, छोड मुझे जो तरसाओगे ।
गुण थानक चढ तोरे चरण ढिग, रह कर मगन रहूं दिन रतियां ।

पद.

दुर्मति खंडन चेतन प्यारे, है प्रगटे मम अनुभव द्वारे ।
पर सम्बन्धी तम विघटायो, अनुपम ज्ञान प्रकाशन हारे ॥ १ ॥
तन धन जोवन है जड रूपी, तिनसे नेह छुड़ावन हारे ॥ २ ॥
रामा श्याममें जग राचा, निज उपयोग तुडावन हारे ॥ ३ ॥
जग सीपीमे मुक्ता सम है, अद्भुत कांति दिखावन हारे ॥ ४ ॥
या मोतीको धार हृदयमें, भवकी ताप मिटावन हारे ॥ ५ ॥
सिद्ध स्वरूपी वस्तु अरूपी, चेतनता गुण धारण हारे ॥ ६ ॥
सुखदधि प्रगटे ध्यान धरेसे, भवदधि पार करावन हारे ॥ ७ ॥

पद.

सुमति धारक चेतन प्यारे, भये निश्चल अनुभव मझ धारे ॥टेक॥
मन मोचनको तीक्षण छैनी, अंतर भेद करावन हारे ॥ १ ॥
मोहयथी त्रिइरूप जगतको, क्षणमें जलांजलि देने हारे ॥ २ ॥

जिनपर वस्तु अपनी मानी, नाश हुए दुख बहने हारे ॥३॥
चक्र जगतका निशदिन फिरता, तासो दूर बरतने हारे ॥ ४ ॥
परम दिगम्बर मुद्राधारी, आकुलता बिन रहने हारे ॥ ५ ॥
शीतल छाया समता पाई, भव आताप बुझाने हारे ॥ ६ ॥

पद.

मोह नगरीसे दिल हम, हटाए जांयगे ।
चेतन पुरमें कदम हम बढ़ाए जांयगे ॥ टेक ॥
यहा पाए अनेको हैं संकट बड़े ।
निःकंटक सुथलमें सुसुख पांयगे ॥ १ ॥
जिसको जाना था अपना उसीने ठगा ।
ऐसे ठगियाकी सुहबत तजाए जांयगे ॥ २ ॥
सम्यक् दृष्टि जगी अपनी शक्ति पगी ।
गर्त पतनोंसे निजको बचाए जांयगे ॥ ३ ॥
ज्ञान वैराग्य संयम सुमित्तर मिले ।
मोह भटके कुबलको घटाए जायगे ॥ ४ ॥
आतम अनुभवके शस्त्रसे परको मिटा
सुख सागरमें लयता जनाए जांयगे ॥ ५ ॥

गज़ल.

निजातम रूप निरखनको, बनाया एक दर्पण है ।
वहीं त्रैलोक्य भी झलके उसीमें गुण समर्पण है ॥ टेक ॥
भुलाकर सर्व विषयोंको मैं निर्विष फलको खाऊंगा ।
कि जिसके स्वादमें लोभी, रहे आपीसे मुनिगण हैं ॥ १ ॥
किसी जंजालकी टोली, न दर्पणको करे मैला ।

सभी विकल्प संकल्पोंसे, हटे रहते जो भविगण है ॥ २ ॥
है अंतर बाह्य जो लक्ष्मी, वही सुख पदको सूचे है ।
जिसे वंदें अरु पूजे हैं, सुभावोंसे अमर गण हैं ॥ ३ ॥
जो हैंगे सिद्ध सुख रूपी, सदा निज भावमें रमते ।
जो सुखोदधि है वही जाते, जहां रहते परम गण हैं ॥ ४ ॥

पद.

परसे मोह छुड़ा ले चेतन, परसे मोह छुडा ले ॥ टेक ॥
पर संयोग महीं विपता बहु, निज दर्शन लौ लारे ॥ चे० ॥१॥
तीन लोक ज्ञाता अविनाशी, धर्म मूर्ति शिव भारे ॥ चे० ॥२॥
पुद्गल धर्म अधर्म काल नभ, इनसे भिन्न लखारे ॥चे०२ ॥
छहों वसे एकी कुंडलीमे, पृथक् पृथक् उलखारे ॥ चे० ४ ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण मय, आतम स्वरूप जमारे ॥ चे० ५ ॥
ज्ञानानंदी अनुभव करते, निज अमृत रस पारे ॥ चे० ६ ॥
श्रद्धा द्वारे सुखदधि पावे, तामें प्रीति बढ़ारे ॥ चे० ७ ॥

लावनी.

हो सुन्दर तुम सुख रूप छोडो बेईमानी ।
अपनेकी कर पहिचान त्याग हैरानी ॥ टेक ॥
मत उल्टी तूने अपनी कर राखी है ।
भव भ्रमणकी कडवी व्यथा नित्य चाखी है ।
जो रिपु तेरे हैं बना उनका पाखी है ।
चउ असी लक्षकी देहली इससे झांखी है ।
पर धनको अपना मान बना अभिमानी ॥ १ हो० ॥

है कौन कहांसे आके रूप धारा है।
क्यों दुख शोक चिन्तामें बना न्यारा है।
कहा दादा नाना गए, किधर प्यारा है।
बिन सोचे समझे बना तू मतवारा है।
दिनरात खाकको छान उठाने हानी॥ २ हो० ॥
चैतन्य धाम तू सत निधान अविनाशी।
आनद कंद है परब्रह्म परकाशी।
तू पच द्रव्य से भिन्न सकल भय नाशी॥
है सिद्ध निरंजन ज्ञान भानु गुण राशी।
इस भांति जान निजरूप न हो परमानी ॥३॥ हो० ॥
निज स्वाद में गर तू मगन रहे दिन राती।
सब विषय वासना तुझे छोड़ हट जाती।
क्रम क्रम से सर्व कषाय शक्ति हट जाती।
निज अनुभवकी शुचि कला आ‍‍‍‍ उट जाती।
तू पाके आप मुकाम रहे नित ज्ञानी ॥४॥ हो० ॥

राग.

जिन जिय ध्यान कराई, अरे मन ज्ञान बढाई। टेक
शब्द ब्रह्ममें भाव ब्रह्म है, विरला ताहि लखाई। अरे० ॥ १ ॥
अलख अगोचर निज मय स्वामी, परदे धाम कराई। अरे० ॥ २ ॥
परदा दूर करो हिय शुचि कर, ज्ञान भानु दरसाई। अरे० ॥३॥
मोह ध्वान्त एक भारी व्यथा है, तामें रमो मत भाई। अरे०॥४॥
सुख निधि देख देख शुचिता घर, संत समागम जाई। अरे०॥५॥

पद.

उज्जयंत गिरी आई, नेम प्रभु ध्यान लगाई ॥ टेक ॥
रजमति छांडी शिवतिय कारण सर्व जगत विसराई ॥नेम०॥
निज अनुभवकी अग्नि जलाकर, शुक्ल ध्यान जगाई ॥नेम०॥
चार घाति कर्म नाश कर, केवल ज्ञान उपाई ॥ नेम० ॥
चार अघातिया शिवतिय रोकत, नाश परम शिव पाई ॥नेम०॥
समता वीतरागता निजमय, सुन्दर रस रसवाई ॥ नेम० ॥
मोक्ष महलमें राजत सुखनिधि, आनंदरूप रंगाई ॥ नेम० ॥

राग.

रे मन भेद ज्ञान चित लाओ, भेद ज्ञान चित लाओ ॥ टेक ॥
त्रयम रत्न हृदय पुट राखो, आनंद नित्य मनाओ ॥ रे मन० १ ॥
जिस विन जाने हो रहे आधे, वामें प्रेम लगाओ ॥ रे मन० १ ॥
निज भा अनुपमतम हरतारी, प्रगट ताहि कराओ । रे मन० ॥३॥
गुण-पुष्पोंको धर्मवृक्ष में, देख देख हरखाओ । रे मन० ॥४॥
शांत सुधादा निर्मल रस पी, आतम पुष्ट कराओ । रे मन० ॥५॥
स्वयं सिद्धि चिन्मय अविनाशी, परमातम पद ध्याओ । रे मन०॥६॥
सुखोदधि में लय हो निशवासर, भवतम मोह मिटाओ। रे मन०॥७॥

ग़ज़ल.

निजानंद रूप निरखनको में संवर चितमें ध्याऊंगा ।
जो आश्रव पाप पुनरूपी, न उनमें दिल लगाऊंगा ॥टेक॥
कभी क्रोधी कभी मानी, कभी विषयों में रज्ञा हूं ।
विषय विषसम लखाकर मैं, सब आपदको भगाऊंगा ॥१॥
निजातम तत्व है अनुपम, उसीमें है जो अनुभूति ।

वही मत ध्यान है सुंदर, इसीसे भव नशाऊंगा ॥२॥
परम मत धाम निजमें है, क्यों बाहर ढूंढता ऐ दिल।
स्वपद सुखपद का है दाता, सभी परपद हटाऊंगा ॥३॥
करम पिंजरे को अब तोड़ूं मैं, देखूं ज्ञानका मंदिर।
वही आनंद सागर है, वहां डुबकी लगाऊंगा ॥४॥

गज़ल.

हुए निज ज्ञानमें निश्चल वे पर पदको हटावेंगे।
दृढावेंगे स्वपरिणतिको, सदा आनंद पावेंगे ॥ टेक ॥
जो रटते हैं परमपदको, मनाते हैं निज अनुभवको।
वे संकट क्लेश खेदोंमे, भली विधि दूर जावेंगे ॥ हुदा ॥
न पाकर तेरा दर सुन्दर, उठाई है बहुत विपदा।
इसी बहु कालकी सेवाको, अभी हम मिटावेंगे ॥ २ ॥
किये पर कर्म नित मत ही, न देखा उनमें अपना पद।
अब बालू रेतको तजकर, तिलोंको हम तलावेंगे ॥ ३ ॥
पिया नित भ्रत है खारा जल, मिटी इससे नहीं तिरषा।
सुखोदधि पाके अब सुखसे, परम तृप्तिको पावेंगे ॥ ४ ॥

भजन.

फंस कर व्यवहार धर्म आपको गमायो।
अंतरमें बैठे प्रभु देख नहीं पायो ॥ टेक ॥
दृष्टि शुद्ध पै मलीन, अंतर अकुलायो।
भरम करम मूल नहीं तदपि है भ्रमायो ॥ १ ॥
धर्म और धर्मी जिन भिन्न दर्श पायो।
टाल कर अधर्म सर्व, भेद हृदय छायो ॥ २ ॥

क्यों कर सत साधु संग, नित्य नहीं पायो ।
जिस बिन आलम्ब भये, खेद बहु बढ़ायो ॥ ४ ॥
होओ मम मगन आप, आप क्यों भुलायो ।
देखो दृग खोल वहां दुष्ट मित्र पायो ॥ ५ ॥

लावनी.

पर पदमे पर पदको देख निज पदमें निजको लखि लीजे ।
छोड़के अंतर अपने अंतरमें अंतर रख लीजे ॥ टेक ॥
हुआ अनंता काल न जाना तूने अपना ज्ञान वली ।
इसीके कारण तूने दर दरमें खूबी खाक रली ॥
चक्र जगतका चले आपसे, तेरी इसमे कुछ न चली ।
मृग तृष्णामे फंसा नहि, पाई सुखकी एक कली ॥
गुरु कहते हैं टेर टेर, मत झूठा भोजन भखि लीजे ॥१॥ छोड़०
छिपा हुआ भंडार पड़ा नहि, अब तक तूने देखा है ।
रत्न अमोलक न जिनका नाम न कोई लेखा है ।
काले परदेके भीतर एक ऐसी सुन्दर रेखा है ।
ग्रहण करे जो सीधे मारगको उसने पेखा है ॥
सीधी कर दृष्टि अपनी, निज भावमे भाव निरख लीजे ॥२॥ छोड़०
जप तप संयम साध साध तपसीका नाम धराया है ।
गुणाभासमें गुणोंका भेद न कुछ भी पाया है ॥
मुद्दतसे जो प्यासा आया फिर भी क्यों तरसाया है ।
भरा कुंड यहां अमृत जलका नहि तूने दर्साया है ॥
उतार कर कपड़े स्व-स्वच्छ हो जलके स्वादको चख लीजे ॥छोड़०
तीन भवनके रूप निराले सब है जिनने मथ डाले ।

पृथक् २ कर जिनसे था नेह उन्हें घरमें पाले ॥
बचा न कोई सार जभी तब बन्द किये घटके ताले ।
धूम मचाई पिये खुश रंग सभी मदके प्याले ॥
भेद ज्ञान पथ पर पग धर घर सुख मंदिरकी मिश्र लीजे ॥छोड़०

गज़ल.

कलममें है नहीं आफ़ताब, जो देखे रूपको तेरे ।
जो देखे है न लिख जाने, जबांसे नहिं तुझे टेरे ॥ टेक ॥
सही पत्थरकी मूरत है चलाचल क्यों नजर आता ।
समुन्दर है गा यह गल्वा नहीं है खार पन तेरे ॥ २ ॥
बना नाटक निराला है जो देखो आला आला है ।
असल पर मोह होता है, नकल आता नहीं हेरे ॥ ३ ॥
तुझे गर मैं बुलाता हू, न करता है इधर रुखको ।
यही अफसोस है मुझको, न सुनता शब्द है मेरे ॥ ४ ॥
पड़े है बदकी सुहबतमें, इसीसे हो रहे दुखिया ।
बस अब सब छोडना झंझट, सही पहुचूंगा तुझ डेरे ॥
हकीकी है तुही मेरा, न तुझमें है गा कुछ भी फर्क ।
तेरे ही साथ सुख सागर, नहाउंगा मरम सेरे ॥ ६ ॥

दोहा.

किसको मारूं जग विषे, साधक साध्य न कोय ।
जो देखूं समदृष्टि कर, तो आपी आपी होय ॥ १ ॥
जा रसके रमिया भये, छोडा सबका मोह ।
वा रस अमृत स्वादको, कौन चहै जग लोह ॥ २ ॥
नचन द्वारसे पैठने, पहुंचे महल मंझार ।

जा नारीका रूप लखि, हो त्रिनेत्र अवतार ॥ ३ ॥
वाके अंगमें मगन हो, तजे न कबहूं संग ।
राग द्वेष जग टारके, रहे सदा निज रंग ॥ ४ ॥
जा रंगकी धारा छुटी, पडी सुढारा गात ।
दो रंगमें भीजके, एकमे एक समात ॥ ५ ॥

पद.

आज शिव मंदिर जावेंगे ॥ टेक ॥
ज्ञान जान अपना फर्मान, आज भव द्वंद मिटावेंगे ॥ १ ॥
बाट निराली देखी आली, कैसे पग न चलावेंगे ॥ २ ॥
समता सखी ले अपने संग, मगमें गीत गवावेंगे ॥ ३ ॥
द्वादश भांति तपदल संग ले, मोहकी सेन भगावेंगे ॥ ४ ॥
शिवद्वारा सुखधारा पाकर, एकमें एक हो जावेंगे ॥ ५ ॥

दोहा.

गुणग्राही गुणधाम है, अविचल सिद्ध मुकाम ।
जो वाका दर्शन करे, रहे न नाम न ठाम ॥ १ ॥
लीन होय वा रूपमे, सब सुध बुध विसराय ।
खान पान सोना तजे, मतवाला हो जाय ॥ २ ॥
जगके रस तब ना रुचें, रुचे निजामृत क्षीर ।
पान करत प्रति क्षण रहे, पुष्ट हो आप शरीर ॥ ३ ॥

दोहा.

जगमे जो जगत फिरे, चारों गति के बीच, ।
वाको नित्य प्रणाम हो, हृदि आगन के बीच ॥
समता दृढ़ता नम्रता, धारि विरोधी अंग ।

कैसे तिय पुरुषनि लडे, जय पावे सरवंग ॥
अकस्मात् आई नजर, ज्योति स्वप्नके माहिं ।
सारी निद्रा छूट गई, वसी दृष्टि तिस छांहि ॥
गंगाका पानी वहै, लहर उठैं नहिं एक ।
पर लहरें नित प्रति उठैं, क्या अचंभ नहिं एक ।
महिमा तेरे ज्ञानकी, उदय हुई घट माहिं ।
रसना जिम रस कथनको, समरथ है कोई नाहिं ॥
अनुभव रस सागर भरा, जितना चाहे लेहु ।
लेकर दृढ़ हो राखिये, कभी न पीछा देहु ॥
माला भत्र इन गुननकी, परम सुभग सुख रूप ।
जिन पहनी निज कंठमें, शोभा लही अनूप ॥
कुंकुम केशर गंध नहिं, नहि तारावलि रूप ।
शुक्ल सुरूपी मोतियां, लसैं ज्ञान द्युति कूप ॥
चेतन चेतन सब कहें, चेतन वस्तु न एक ।
जग दृष्टि कर देखिये, तो दीखें बहुत अनेक ॥
कोई कहे एकी वही, कोई कहे है शून्य ।
कोई कर्त्ता भोक्ता, करत पाप और पुण्य ॥
पाप पुण्य दोऊ दशा, हैं पुद्गलकी छांहि ।
जो पुद्गल देखे नहीं, दृष्टि पडेंगे नाहिं ॥
संसारी और सिद्धमें, फरक न कुछ भी जान ।
एक फिरत बहु देशमें, रहत एक निज थान ।
योग चपलताको लिये, डोलें चहु गति बीच ।
योग रहित निश्चल भया, सकत न कोई खैंच ॥

समय समयमें समय है, सम निश्चल अभिराम
जिन आसन थिर मांडिके, देखा जिनके धाम ॥
काम नहीं है ध्यानसे, काम नहीं सुख बीच ।
काम करत नित प्रति रहे, देखो ज्ञान नगीच ॥
अनुभवकी बातें करत, पड़े न दिनका ख्याल ।
ते तिस सागर जात है, देखत देखत लाल ॥
आश्रय काको दीजिये, कोई न राखन हार ।
जिस मारग जिनवर चलें, चलबो वा मग सार ॥
सार सारदा हुकमको, धार हिये के माहिं ।
कलुष कालिमा पाप की, दूर होय छिन माहि ॥
अपराधी आपी भयो, मूस परायो दाम ।
आपी खडो हजूरमें, पुनि पुनि करत प्रणाम ॥
क्षमा करी जब आपकी, त्याग दयो पर दाम ।
नेह गयो पर द्रव्यसे, प्रगटायो निज नाम ॥
अनुभवके भीतर बसे, घन अनुपम अविकार ।
शुद्ध दृष्टि कर देखते, अपना वे एक बार ॥
बार बार दृष्टि करें, शुद्धातमकी ओर ।
तो निश्चल स्वामी रहे, चलें स्वपदकी ओर ॥
कर्म करें सो ही सही, टले न कोई भांति ।
उन करमनिकी चालमें, पडे जीव बहु भाति ॥
सोचत है जिय रयण दिन, मैं कर लू वह काम ।
उलट पुलट छिनमें भई, भूल गया सब धाम ॥
राव रंक सब बस पडे, इस कर्म जालके बीच ।

मूझत है मारग नहीं, अटक रहा जड़ कीच ॥
मित्र शत्रु सम होत हैं, यश हो अयश मुकाम ।
तीव्र कर्मके कारणें, होय जात बेदाम ॥
जो दुख देवे कर्म जग, भुगते ममता धार ।
देखे ना इत उत कभी, राग द्वेषकी आर ॥
मनकी चिन्ता है विषम, टलनेका न उपाय ।
दृष्टि आंधी हो रही, कैसे सतगुरु पाय ॥
ज्ञानाजन सत वैदजी, डालें दृष्टि मझार ।
चिन्ता सब छिनमें टले, देय लखे ममार ॥
वह सतगुरु कहिं दूर नहिं, अपने तनके लार ।
ध्यानासनको माड़ने, आवे हियके पार ॥
जिम अविभागी समयका, होय विभाग न कोय ।
ताको नित वंदन करूं, स्वपर विवेकी सोय ॥
जग दारुणके भीतरे, कोइ नहीं सुख सार ।
परमानंदके कारणे, विकल रहे मन हार ।
कर्म कठिन कैसे टलें, जिन दीना दुःख घोर ।
इनके सन्तापादिके, हरता कोई नहिं और ॥
जिस रसमें सब जग सुखी, जिसमें दुःखी आहि ।
ताही रसके त्यागते, समरस हो चित मांहि ॥

दोहा.

पर आश्रित परफंद को, जिन टाला दुखरोघ ।
पाकर शुद्ध स्वाभाव को, जान लिया श्रुतबोध ॥
महिमा अनुपम शक्तिकी, मनसे कठिन अपार ।

जो जाने सो अनुभवे, पहुंचे शिवके द्वार ॥
शिवका दर्शन करत ही, अर्द्ध अंगमे जान ।
बैठी शिव रमणी विमल, शुद्ध प्रेम पहिचान ॥
नित्य अवस्था पलटते, नाना रूप सम्हार ।
पर शिव गौरी रूपको, बदले नहिं कोई वार ॥
जो चढा वाके द्वार न, मस्त हुआ छवि देख ।
तृष्णा आकुलता मिटी, मिटी कर्मकी रेख ॥
देखत देखत रूप शिव, हुआ आप शिव रूप ।
प्रेम बढ़ाया रमणिसे, सौभागिन सद्रूप ॥
सुख काल अनंत तक, भोगे वाके साथ ।
होय विरह नहि एक छिन, मिला हाथ मे हाथ ॥
रस निज अमृत ज्ञानका, पीवत काल अनंत ।
मगन रहैं समता लहै, करै क्लेशका अंत ॥
आपी देखन हार है, आपी है शिख रूप ।
आपी शिव रमणी विमल, आपी रूप अनूप ॥
कर्म भर्मके मर्ममें, जो होता अति दीन
शर्म धर्मके मर्मको, नहि पाता हो हीन ॥
जगमे संसारी फिरे, भरे कर्म अति घोर ।
टरे न जियसे वह मती, जो निज गुणको चोर ॥
सकल गुणनको साधते, हो जाते जो साध ।
पर जो अनादि संग है, उसमें कोई नहि बाध ॥
अनुभव अनुभव आरसी, अमल अबाध अपार ।
अगम अतुल आनंदमय, आप आप अनुसार ॥
धर्म मित्रके नामसे, होता चित्त हुल्हास ।

चिन्ह दृष्टि आंखन पड़े, क्यों न मिटे मन त्रास ॥
प्रतिमा देखन फल यही, हो सन्तोष अपार
भेंट हो परतक्ष्यमें, क्यों न बढ़ै सुख सार ॥
परम ज्ञानके ध्यानमें, रहें मुग्ध जो लोग
संसारी निंदै तिन्हे, तिन्ह न आवे सोग ॥

दोहा.

मनसा वाचा कर्मणा, वंदन है त्रय काल ।
जो तेरे घटमें बसे, वही हमारा लाल ॥
शंका अपनी दूर कर, होना नित दृढ़ रूप ।
साहस सब कारज करे, सोखत है सब कूप ॥
गगन स्वच्छ है स्वच्छको, धूम्र धूम मल धार ।
जानत मानत ठीकसे, निर्मम निश्चय सार ॥
जित देखे तित पाईये, सत साधु धर्मीश ।
जो अपना लेखा करे, बने जगतके ईश ।
सत्संगति निज भावसे, निज भावोंको जान ।
जो ढूंढे पावे सही, कहे गुरु पहचान ॥

दोहा.

संतनके घरमें सदा, करे उदारता वास ।
तन मन धन अपना नहीं, बने सभीके दास ॥
निज घटमें नैना नहीं, जाय सके कोटि बेर ।
घर घर कर भेंट वहा, बन गए अचल सुमेर ॥
शुद्धातमके नाममें, नहीं सिद्धको काम ।
जो बोले बोले रहे, करे न सो परिणाम ॥

घटकी कुन्जी लाईये, जाकर गुरुके पास ।
बिना खुले घट द्वारके, हो क्यों रतन प्रकाश ॥
शंका तृष्णा डोरको, तोटो इक चित होय ।
जा विन भरमे जग विषे, अपना आदर खोय ॥
रहो मगन निज रूपमें, बने शाहके शाह ।
जो परकी चोरी करें, सहे अगनि दुख दाह ॥
शरण जगतमें देखिये, कोई न दीखे लोय ।
अपनी आंखी मूंदिये, तो आपी शरणा होय ॥
निकल निरंजन रूपको, चाहे नहिं जड़ ध्यान ।
चाह करे तैसे मिले, निश्चय येही जान ॥
शशिसम दाता शांत रस, पाठग्रन्थ सुखदाय ।
जो वाकी छविमें रहे, लहैं बोध अधिकाय ॥
आचारजके भाव शुभ, भरे वर्ण घट माहिं ।
कागज निर्मल कोठरी, श्रेणि रूप ठहराहिं ॥
घटको खोले जो पिये, भावामृत जग सार ।
मिटै अनास्था कालिमा, होवे स्वच्छ अपार ॥

अडिल्ल.

राग द्वेष मद मोह क्रोध, दुख दूर मिटाओ ।
अशुभा लेश्या त्याग, शुभा में पग भटकाओ ॥
भागत भागत जात, छूट शुद्धातम पायो ।
थिर रह्यो एकी ठाम, फेर नहिं भ्रमण बतायो ॥

दोहा.

गुण स्थान महिमा अगम, चढ़े सुदृष्टी धार ।
पहुंचे अपने महल में; तज निश्चय व्यवहार ॥
कल मल दल नि.सल्ल हो, धार वृती का रूप ।
संयम ले साधु भये, बन गये आतम भूप ।
अनुभव रस चाखत रहे, तृप्त न हों कोई काल ।
ऐसे लोभी साधु को, वदत नमकर भाल ॥

कुंडलिया.

शंकरजी के नाम का, जो कोई कहिनार
पावे मोक्ष रमा विमल, जो सबको सुखकार ॥
जो सबको सुखकार, उसे जो गले लगावे ।
टाले सब दुख द्वन्द्व, सुख अविचलको पावे ॥
मोह गहलता दूर करे, पर मोह बढावे ।
जो निज तियके गले, आपनी भुजा भिडावे ।
एक मेक हो जाय, फरक नहि प्रेममें कोई ।
सिद्ध सुथानक लखे, शक्तिमें निर्मल सोई ॥

दोहा.

भाई साहब लाल मल, सब पुद्गल पर्याय ।
निश्चय दृष्टि पसारिये, दीसे चेतन राय ॥
जा विन मन अकुलात है. कहा यह मनका चोर ।
निश्चयसे देखो यहां, तो बैठा जग सिर मोर ॥
कर्मकाडके त्यागको, होता बेकल जीव ।
निकल अकल परमारथी, आप ही आप सदीव ॥

चेतन अपने दर्शको, दीजे करुणाधार ।
तरस रहे हैं नेत्र मम, है क्षोभित व्यवहार ॥
शंकर सुख कर ईशको, नमूं मैं बारंबार ।
जिनकी कृपा होत ही, छूट जात संसार ॥

दोहा.

परमारथ पथ चलनको, चाहैं सब जग जीव ।
पैर उठत नहिं एक पद, भरयो प्रमाद अतीव ॥
अपनी अपनी लगनमे, लगे सिद्ध सुख राशि ।
विनती हम बहुतहि करी, निज हिय ज्ञान प्रकाशि ॥
वीतरागके कानमें, चले न काहू जोर ।
उत्तर कुछ पावत नहीं, जात करम है छोर ॥
मैं तो निरखूं मुख प्रभू, कब सुन पाऊं बात ।
संगी मुझको त्याग कर, परके होते भ्रात ॥
गुण रूपी चेतन सुखी, परमातम पद धार ।
निज दृष्टि निज रूपमें, देख मगनता सार ॥
धार्मिक जनकी संगती, सब सुखको कर्त्तार ।
जो जाने गुण आपका, पावै भव दधि पार ॥

दोहा.

धर्म प्रेमकी ग्रांठकों, बांधो आपा बीच,
यही ज्ञानकी खान है, अन्य सभी जग कीच ॥
दर्शन निजका दीजिये, यह इच्छा चित पाय ।
हो आपी आपी मगन, तीन जगत सुख दाय ॥

या विन साता चित्त नहिं, या विन नहीं विराग।
या विन आशा क्या मिटे, या विन जले न आग॥
अंतरमें वसता वही, जो है मगन प्रकाश।
चाह सदा या दर्शकी, छोडी सगली आश॥
परमातम पद दीपिका, जले उसी घट माहिं।
जिनने नैन पसारके, देखा जग निज माहिं॥
जग ढूंढा जग रूपको, नहिं पाया सत ज्ञान।
परमानंद दशा विषै, वसता है निर्वाण॥
गुरु कोई मिलता नहीं, अपने घट नहिं ज्ञान।
क्या उपाय अब कीजिये, मिले जो अमृत थान॥
सुख दायक तू ही प्रभु लाजको राखन हार।
मैं दुखिया संसारमें, तू दुख मेटन हार॥
ना दुखिया संसारमें, ना सुखिया भव माहिं।
भरम पडे जग जीवडा, भूल रहे घट माहिं॥
यदि संगति साधूनकी, मिले नहीं दुखटार।
तो नित पढ़िये शास्त्रको, अध्यातम सुखकार॥
यही मनन अक्षरन तें, करे एक थल जाय।
परमादिन के संगको, तजे सर्व दुखदाय॥
सुखंत विकथा बहु वंक, भटकावें पर चित्त,
जो इनकी संगति करे, टालें धर्मने मित्त॥
निर्णय कासो कीजिये, कोई नहीं संग साथ।
आप अकेला चिन्तवे, लगे न दूसर हाथ॥
परम ब्रह्म के नाम को, मैं चिन्तू दिन रैन।

यह चिन्ता किस काम की, जिससे पडै न चैन ।
मनका मनमें राखिये, जंह सोह ध्वनि होत ॥
मनकी चर्चा मन विषे, करत सुमन उद्योत ।
मन जानें मन अनुभवे । मनही करत प्रतीति ।
मन बिन निपट अज्ञानके, होत न निजसे प्रीति ॥

राग.

जगदाधारं सुख आकारं, निरहंकारं ओंकारं ।
वंदे दु:खहारं नैकप्रकारं, आप आधारं कर्त्तारं ।

दोहा.

जग हैगा दु:ख बीच मे, वाही मे मन लीन ।
किस विध याको फेरिये, ज्यों होवे नहिं दीन ॥
परमातम परकाशका, कर मन नित अभ्यास ।
संशय विभ्रम मोह को, करदो छिन मे नास ॥
परमारथ पद दीपिका, जलै शुद्ध घट माहि ।
घट पट दरसावत सकल, जहा मोह तम नाहि ॥
अध्यातम की बातमे, कहें बावले लोग ।
जो कोई उत्तम हुआ, धारा उत्तम जोग ॥
स्वाभाविक मन कणिका, भेजो निज चित पास ।
जासे साता प्रगट हो, टूट जाय भव त्रास ॥
कथनी जाके कथन की, है अति गूढ अगाध ।
गणधर पार न पावहीं, जो कथते निर्बाध ॥
मनन करो आवे नहीं, अपने हिये मंझार ।
योगी सन्यासी जती, सिर पटकत सौ बार ॥

लिखत पढत ग्रन्थन बहु, नहिं पावे वा छोर।
मौनी ध्यानी होय पण, चलत न कछू जोर ॥
यातें समता राखिये, जो है सो निज आप।
छाड़ सकल मन माख अरु, खेद क्लेश संताप ॥
अपने मनके रागसो, धाँ निजके म हिं।
वैरागी पूरण वही, बाधा व्यापे नाहिं ॥

राग.

क्या कहें छाया है घट पर मोहका जो तम महा।
दृष्टि जिसने बंद की है, इससे बहु तो दुःख सहा ॥ १ ॥ टेर ॥
मनके वनमें ढूंढते है, रास्ता मिलता नहीं।
झाड़ियोंके कटकोंमें फंसके, खून ही दुख रहा ॥ २ ॥
अपने पाके रूपका कुछ भी निशा पाता नहीं।
भूलकर सब लक्षणोंको लख निजमें है गहा ॥ ३ ॥
कूप अर खाई नदी, कोई नजर आती नहीं।
पड़ता गिरता आपसे नदियोंमें भ यों ही बहा ॥ ४ ॥
पर्वतोंसे टक्कर खाई कभी कट गिर पडा।
खोकर अपन होश सारे, पर्वतोंको भी ढहा ॥ ५ ॥
किस तरह पाऊं वही जो राह सच कही वहे।
या टरे दृष्टि अंधेरा जो सदा दु.खकर रहा ॥ ६ ॥
कहिये व हिर आपको मैं छोड कि पे जाऊंगा।
आप ही नता मेरे जिनने काम लाड़ दहा ॥ ७ ॥

दोहा.

भक्ति किस विधि कीजिये, मिले न भक्ति योग।

शक्ति भक्ति किस तरह, हो निज गुण संयोग ॥
अनुभव अनुभव सब कहें, अनुभव रूप अनूप ।
अनुभवमें आनंद मिले, अनुभव सुख रस कूप ॥

दोहा.

सज्जन समता करत हैं, करते सर्व सहाय ।
धर्म तत्त्वकी बातमें, रहते नित हुलसाय ॥
धार्मिक जनकी संगति, देख होत आनंद ।
वचननके सुनते थके, टलें दुख अर द्वन्द ॥

सोरठा.

सत पुरुषन का चित्त, होय सदा कोमल सही ।
देख सुखी पर जीव, ईर्षा कदि व्यापे नही ॥

दोहा.

कर्म कठिन जड़ रूप हैं, करें आत्म जड़ रूप ।
जो इनकी संगति धरे, खोवे द्रव्य अनूप ॥
कर्म दास जिन जानकर, किया अनादर आप ।
भोगे अपना रूप ले, लेकर सब संताप ॥
महिमा स्वपर सुधानकी, लखी सही गुण रूप ।
अनुभव में रत तब हुए, जहां सुधा रस कूप ॥
सतवाणी का एक पद, जो कर्णन में जाय ।
बाधा जो बहु कालकी, क्षणमें सो टल जाय ॥
मित्र समान न लोक में, कोई दुःख हरतार ।
सब जीवन को मित्र सत, दीजो विधना सार ।

राग.

दृग सुख ज्ञान वीर्यको धारी, है अनुपम अविचल अविकारी।
गुण अनंत धारी निर्धारी, ज्योति मई अविकल दुःखहारी ॥१॥
षट् चौदश भेदनिसे न्यारो, षट्में रहे परम निधि धारो।
शंकर ब्रह्म मई भूपाला, वृद्ध विशाला स्वच्छ गुणमाला ॥
एक द्वै त्रय रूप निहारी, शुक्ल अंग नहिं वर्ण विकारी।
पंचाक्षर मय एक पद धारी, सिद्धाचल अंकित छवि प्यारी ॥
ज्ञाता ज्ञान प्रमेय प्रमाणं, कर्त्ता धरता विबुध बखानं।
भोगी जोगी निकल विहारी, निज सत्तामें मगन अपारी ॥

दोहा.

शुभमें गुणमें रूपमें, सबमें चेतन राय।
जो देखे वह धीरसे, तो तन मन हरखाय ॥
जिस घटमें आनंद बसे, वही सुखामृत धार।
निज निज कार्में देखिये, बसे जगत व्यवहार ॥

दोहा.

निंदा गर्हा क्या करे, रे सुन चेतन देव।
तू करता तू भोक्ता, है साधन स्वयमेव ॥

दोहा.

निजमें दर्शन रूपका, जो चाहो गुण वृन्द।
तो अपार आनन लखो, जो त्रिलोकि स्वच्छंद ॥ १ ॥
अनुभव साचा गुण जगत, अनुभव सुख दातार।
जो जो अनुभव शरणले, पावे ज्ञान अपार ॥ २ ॥
" दर्शन अपने मित्रका, होवे सबको इष्ट।

जो पावे अमृत सुखै, अंतर बाहर मिष्ट ॥

राग.

मोहनगर तें निकस चले, सखि जात चढे गिरपर हैं कैसे ॥टेक॥
मोह महीमय जाल बिछाया, नांघ चले खगपति हैं ऐसे ॥१॥
एक पग आगे एक पग निजमें, झूमत जात मदन पति ऐसे ॥२॥
शिवनारी को परसें अबहीं, होत उमंग न बोलत लसे ॥३॥
लखु शिखरपर महल जासको, पहुंचन दुर्लभ है इस नयसे ॥४॥
मोको त्यागा जगको त्यागा, त्यागमें ध्यान लगाया कैसे ॥५॥
चलो हमभी चलें वाही मारग, देखें कैसे वरें शिवनारी अनयसे॥६॥
जिस रस व्यापी होके रहेंगे, हमभी चहेंगे निज रस वैसे ॥७॥
सुखसागर में मज्जन करना, प्रण दृढ़ धारत हूं मैं ऐसे ॥८॥

दोहा.

अनुभव पुष्प विशाल सुख, मण्डप बनी अनूप ।
पहर लई निज कंठमें, किधों कामको रूप ॥ १ ॥
दश ज तिनके पुष्पमे, शोभा लसत अपार ।
आपनमें रमणीकरह, करत सुखद संसार ॥ २ ॥
कन्या शिवदेवी तहां, देख कामको रूप ।
बरनेकी मंसा करी, आई निश्चल रूप ॥ ३ ॥
देख देख आनंदियो, मनमें हर्ष न माय ।
प्रीति बढ़ा कर एक सी, रहे दोनों हुलसाय ॥ ४ ॥
महिमां ऐसी प्रीतकी, कही कबहुं नहिं जाय ।
जो जाने जाने वही, अनुभवको रस पाय ॥ ५ ॥
कामदेवने शुभ लगन, वरी नार गुण खान ।

सुखसागरमें डूबना, यही मान कल्यान ॥ ६ ॥

दोहा.

निश्चय मारग मोक्षका, एक रूप सुखदाय ।
नाना विधकी कल्पना, सो अनंत दुखदाय ॥१॥
परमारथ सांचा सुगम, मन्स्वरूप सुखरूप ।
जो निरखे सत् दृष्टिसे, निश्चय सम्यक् रूप ॥ २ ॥
व्यवहारी व्यवहारमें, रहे मगन मद रूप ।
जाने नाहीं आपको, तातें बंध स्वरूप ॥ ३ ॥
धर्म नाम निक्षेपसे, नहीं भाव निक्षेप ।
धर्म करत तातें दुखी, कबहुं न हों निर्लेप ॥ ४ ॥
जहां भाव निक्षेप है, तहां न भेद प्रसार ।
अनुभव आत्मा पायके, आप आप निर्धार ॥ ५ ॥

दोहा.

परम शांत मुद्रा धरी, गायो निज गुण आप ।
निश्चय नय सब द्वन्द है, व्यवहारे गुण जाप ॥ १ ॥
शंका चर्चा वार्ता, जिस घरमें कुछ नाहिं ।
वाही थानक मन मगन, पावत निज गुण ठांहि ॥ २ ॥
शोकाकुल परमागमी, होत कबहुं न मूढ ।
जो धारे मति वादको, पावें तत्व न मूढ ॥ ३ ॥
तत्वार्थ निश्चय करो, तत्वारथके ठौर ।
परमारथकी डोरमें, बांधो जो कुछ और ॥ ४ ॥

दोहा.

साधारणसे सब सुखी, सभी ज्ञान भंडार ।

सबके ही चित कोषमें, भरे रत्न अम्बार ॥ ५ ॥
देखो जानो आपको, मानो आप तपास ।
सर्व समासन बीचमें, काढ़ो जीव समास ॥ ६ ॥
सर्व जीवको सुख बढ़ो, होय सुपरमानद ।
सुखसागरमें जो मगन, पावे निज आनंद ॥ ७ ॥
दश लक्षणके फंदमें, पड़े न कोई जीव ।
निज परतीको छोड़ता, है नहि ज्ञानी जीव ॥ ८ ॥
परमातम परमेश गुरु, निर्भय निज नय सार ।
हरखित मन जो जननमें, लहै ज्ञान भंडार ॥ ९ ॥
सदा कुशल आतम दरब, क्षमा रूप अभिराम ।
क्षमा करूं तुम दुअनसे, हो राग दोष विश्राम ॥१०॥

सोरठा

परम मृतका पान, हे प्रभु होवे कौन दिन ।
रहत हृदय यह ध्यान, जिस बिन तरसे यह जिया ॥

दोहा.

अपने भाव सम्हालके, चलत आप निष्पाप ।
करत दूर मारग कठिन, त्याग सकल संताप ॥
संशय विभ्रम मोहको, छांड ज्ञान गहि हाथ ।
देखत मारग मोक्षका, जिन्हें नवाओं माथ ॥
अपराधी हैं सकल जन, नहीं सत्यसे मोह ।
अपने निर्मल भाव बिन, फैलायो जगद्रोह ॥
भाव मात्र आकाशमें, बसे सर्व आकाश ।

षट् द्रव्यन मय लोक यह, निज गुण तत्व प्रकाश ॥

× × ×

शिवं परमकल्याणं, निर्वाणं शातमक्षयं ।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन, स शिवः परिकीर्तितः ॥

दोहा.

शिव स्वरूप आनन्द मय, चिद्विलास गुण ठाम ।
वंदू दो कर जोड़कर, तेरे शुभ परिणाम ॥

शैर.

जगमें आतम आपी धावत, नाना जोन मंझार ।
संवेगी वैरागी ज्ञानी, निज लख तजन अथिर संसार ॥

दोहा.

ज्ञान ध्यान तप लीन प्रभु, राजत निज तन बीच ।
एक स्वास सोहं कहत, अनुभव सुख रस खीचं ॥

राग.

निज स्वभाव समता मय जाने, सो कदापि नहिं दुखचित ठाने ।
हर्ष विषाद करे नहि प्रानी, ताहीने गति आतम जानी ॥
सोहं सोहं रटन लगाई, सबकी आतम आपमें आई ।
याहि भांति जग जिन अपनाया, सबमे मोही तीव्र कहाया ॥
ऐसे मोही जनको वंदो, मगन मगन हो पाप निकंदो ।

दोहा.

सज्जन गुणको ग्रहत हैं, दुर्जन औगुण लेय ।
हंस दुग्ध ही पियत है, जोंक तु रक्त पिवेय ॥ १ ॥
कः दुर्जन कः सज्जन., जग व्यवहार समस्त ।

दोनों ज्ञानी सम लखें, मिथ्यातम कियो सु अस्त ॥२॥
पुण्य पापमें भेद नहिं, सम दर्शन ठहराव ।
दोनों आकुलता करें, दाकें निजका भाव ॥ ३ ॥
भेद ज्ञानके कारने, द्विविधा बुद्धि नशाय ।
निर्मल दर्पण सम करी, पड़े न मलकी छाय ॥४॥
सम दृष्टी निज रूपको, देखे दर्पण माहि ।
जैसो है तैसी लखे, शंका पावे नाहिं ॥५॥
क्रोधी मानी देखके, जाने शमका पुंज ।
लोभी मायावी दिपै, मानो संयम पुंज ॥६॥
द्वेषी अपना मित्र है, शत्रु अपना यार ।
जासों वे रिपुता करें, तासों इसे न प्यार ॥७॥
भेद ज्ञानकी अगन से, आश्रव बंध जलाय ।
तब आतमके हस्तपद, निश्चय से पसराय ॥८॥
पिंजरा जब क्षीणा भया, हाथन से मल दीन ।
पैरों सेती कुचल कर, किया तिसे अतिहीन ॥९॥
शुक्ल ध्यान की पवन जब, लगी आय तिन माहिं ।
धुरें वाके उड गये, चिन्ह न कहीं ठहराहिं ॥१०॥
आतम राम आराममें, चला अपने धाम ।
मारग में रुकता नहीं, लौ लागी व ठाम ॥११॥
शिवनारी के रूपको, देखा अनुपम सार ।
मगन हुआ वाही विषे, तीनों लोक विसार ॥१२॥
ऐसे मोहीको नमूं, बार बार सिर नाय ।
जाके चितमें धारते, मोह सकल गल जाय ॥१३॥

जगत माहिं सुखकारि हैं, निर्भय रूप स्वरूप ।
हितकारी के शुभवचन, निश्चय आनंद रूप ॥
जगमें दुर्लभ वचन हित, बन्धु मित्र पित मात ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान तप, चारित पुत्री पात ॥
जिनकी परहित चान है, नमस्कार के योग्य ।
हृदय कमल विकसित करें, रहकर सदा मनोग्य ॥
पावन परम सुहावने, जिन वचनामृत पाय ।
धन्य भाग उनका जभी, चित्त मगन हो जाय ॥
जग पक्षपातमें फंस रहा, मान शिखरमें लीन ।
जानत नहिं चिद्रूपको, दशा बनाई दीन ॥

फारसी की चाल.

कहें किससे न सुनने वाला, कोई दीखता हैगा ।
जो जाने वही जानें, वही भींखता हैगा ॥१॥
निज दर्श पाय जबकि, उन्होंने खुशहाल हो ।
आखें तो मीचली हैं, जगतसे एकहाल हो ॥२॥
पाया निशान जब कि निजानंद नगर का ।
इक आन में मिटा दिया, मुद्दत का था खटका ॥३॥
संक्लेशके परिणामों से, मतलब नहीं कुछ है ।
निर्मल फटिक में देखा तो देखा सभी कुछ है ॥४॥
माली वही है बाग लगाता है खूब सा ।
आपी तो शोभा देख खुश होता है खूबसा ॥५॥
यही भेष बना करके दिखा नाना रूपको ।
आपी कभी भूले कभी जाने निज रूपको ॥६॥
है दौड धूप रंग भूमिमें करी खूबी ।

करतब दिखाए इसने तरह तरह बखूबी॥७॥
रोनेका शब्द कहके कभी हंस भी यह दिया।
मतवाला बन गया कभी कुछ सोच भी दिया ॥८॥
आपी दुखी सुखी हो अनादि से रम रहा।
पर ध्यान अपने रूपका थिर हो नहीं गहा ॥९॥
शुभका उदय हुआ कि सत्‌गुरु तभी मिला।
उसने बता दिया तो टला दिलका सब गिला ॥१०॥
अपना भंडार पाके मगन आप हो गया।
खींचा किनारा जगसे मगन मदमें चित ठया ॥११॥

नाटक की चाल.

रेमन प्राणी, आकुलता हानी, कह कह कह तू अमृतवाणी।
परमें आपा नहिं मानै तू, पर आपा मानी ॥टेक॥
स्वारथ को तज तज कर भी, स्वारथ चित ठानी ॥रे मन० ॥
ग्रन्थनको नितप्रति देखे, पर ग्रन्थन दृष्टि न लानी।
समता अमृत के जल सेती, काष्ठ कषाय जलानी ॥रे मन० ॥
तृष्णा डाकन दूर भगाई, पर तृष्णा अगवानी।
संग नहीं पर संग चलत है, सब संगकी मिहमानी ॥रेमन० ॥
स्याद्वाद के रंग रंगा है अद्भुत गुण दिखलानी।
माया मगन नहीं चित्तमें, पर माया हैरानी ॥रेमन० ॥

दोहा.

भवोदधिमें नित डूबते, मूरख जीव अनंत।
धन्य भाग जिनका, तारक मिल गये संत॥
मेरा मेरा सब करें, कोई न तेरा जान।

सत् गुरु यह शिक्षा दई, मगन हुआ गुन मान ॥

सोरठा.

शान्तसुधारस पूर, जिनवर तेरा वचन है ।
पड़ा कर्णमें भूर, पाप कलंक धोवे सही ।

दोहा.

गणधर थे ज्ञानी बडे, वाणी पुष्प उठाय ।
गूंथी माला अंगकी, बारह भेद बनाय ॥
तिनके शिष्यन पहन कर, लई सुगंध अपार ।
जग जीवन हित कारणे, राखी ग्रन्थ मंझार ॥
तिन सद ग्रन्थन नित्य जो, भवि स्वाध्याय करेय ।
गन्ध सुष्ठु हृदि माहि धर, जिनवर गुण चित देय ॥
धन्य गुणावली प्रभूकी, मगन रहें जा चिन्तय ।
मगन तिन्हें छांडे नहीं, धरत रूप सत् नित्य ॥

सोरठा.

है कहां आतम राम, सूझत है नैनन नही ॥
चर्म नैन क्या काम, जो वा दर्शन कर सकें ॥

दोहा.

ज्ञान नेत्रको खोलिये, परदा मोह हटाय ।
दर्शो आतम निश्चय रहे, यामें शंक न थाय ॥
आग हवा जल गगन में, ना पृथ्वी में वास ।
जिन अणु वन आतम बना, एक ना रावे पास ॥
कैसे तिनके मिलन तें, आतम गुण प्रगटाय ।
ज्ञानी बस्ती ज्ञानकी, अज्ञनी किम पाय ॥

जीव पृथक् सबसे रहे, करै भिन्न सा काम ।
जब तन तज बाहर गयो, पांचों भये अकाम ॥
जगका कर्ता जीव है, जगमें मुक्ता जीव ॥
आपी बोवत वृक्षको, चाखत फलहिं सदीव ।
आपी बांधत कर्मको, आपी ही दुख पाय ।
आपी जब सोचे सुधी, कर्म बंध खुल जाय
वाद विवाद मे आतमको, पावे नहिं जग बीच ।
जो अनुभवके तरु चढ़ै, लावे घटमें खीच ॥
अनुभव चुम्बक रत्न है, लोहा आतम राम ।
दूरहिते मिल जात हैं, बहु श्रमको नहिं काम ॥
विज्ञानी हैगा वही, जिन परखा है आप ।
जिन आपा जाना नहीं, सदा मरै संताप ॥
पर वस्तुमें रक्तता, जब जब होवे पुष्ट ।
जग अन्याय वर्ते तभी, चित्त होय अति दुष्ट ॥
जब काया खिरने लगी, हाय ! हाय ! पछताय ।
मैं मैं मैं मैं करत ही, अंत काल चिल्लाय ॥
आतम ज्ञानी जीव जे, रहे मगन निज धाम ।
कहीं न जाना आवना, एक ठाम विश्राम ॥
यद्यपि घूमें देश बहु, तदपि रहैं एक ठौर ।
आत्म मगन जाने यही, कोई न जाने और ॥

दोहा.

(षट् आवश्यक (श्रावकके) कथन)

चेतन राम दया निधि, दया करे नहीं कोय ।

जो जन अशुभ हि करत है, सो निश्चय फल होय ॥
काहेको वन्दे तुम्हें, करो न काज हमार।
ना रीझो गुणके कहे, अचरज यहै अपार ॥
पूजा सेवा क्या करें, बोलो मुख नहिं बैन।
ना मांगे कछु देत हो, ईश्वर कैसे जैन ॥
निन्दा जो थारी करै, अविनय महा करेय ॥
क्रोध तुम्हें व्यापे नहीं, आपी बंध करेय ॥
वीतराग यातें प्रगट, जगत माहिं जिनसार।
राग जो तुमसे करत है, नाहिं तरै संसार ॥
वीतराग गुणधारके, जो देखे तन रूप।
गान करै गुण निधिनका, पावे ज्ञान अनूप ॥
आपहिं आप प्रकाश हो, ज्ञान कलां निज माहिं।
अनुभव पुन पुन करत हीं, मैल सकल टल जाहिं ॥
काठ माहिं अग्नि बसे, जो चेतन तन माहिं।
काष्ठ काष्ठ घिस अग्नि हो, योग योग चित ठाहिं ॥
ना काहूको वन्दना, ना काहू परणाम।
ना काहूको पूजना, ना कुछ जपना नाम ॥
आपी आपी वन्दना, आपीको परणाम।
आपी आपी पूजना, आपी जपना नाम ॥
पूजा जिनवरकी करै, अष्ट द्रव्य ले सार।
निश्चय पूजा आपकी, यह तो है व्यवहार ॥
कहन सुननको पार्श्वजी, हैंगे ईश हमार।
निश्चय पारस आतमा, पूजा वाकी सार ॥

द्रव्य चढ़ावत आतमा, आपमें करवट लेत।
मन लगा निज भावमें, नाम जिनेश्वर लेत॥
द्रव्य शास्त्रको वांचता, पर वांचत है आप।
देखनको शास्त्र पढ़े, हो रही सोहम् जाप॥
माला लै कामें धरी, वा पद्म धरा घट माहिं।
देखनको मुख फिरत है, फिरती आतम छांहि॥
नमस्कार सुगुरु किया, देखन ही में जान।
गुरु तो अपना आत्मा, वही ध्यान पहिचान॥
संयम धारा वाह्य में, नियम वस्तुको लेय।
तन मन सब निजमें धरा, जाना सकलहि हेय॥
इन्द्री मनको रोककर, कीना व्रत उपवास।
देखनको तप यह किया, निश्चय आतम भास॥
पर दृष्टि विशालमें; चहु विधि दान करेय।
दान क्रिया पर भावको, निज धनमें चित देय॥
आवश्यक षट् यह किये, भरम तप मिटजाय।
सम दृष्टी जाने मज़ा, मगन आप हो जाय॥
आतम आतम सब कहैं, आतम कहने हार।
आतमको जाने नहीं, रटत रहैं व्यवहार॥
इत उत ढूंढत फिरत हैं, कहुं आतम दरशाय।
आतम अपने घट विषे, अनुभवसे प्रगटाय॥
सुखको चाहें सब जने, पर पर खोज कराय।
जो धन अपने पास है, मूढ़ न दृष्टि धराय॥
सुख अनुपम कहिं नहीं, यदि है तो निज पास।

अंतर दृष्टिके विना, कह किम होय विकास ॥
ज्ञान ध्यान वीर्यादिये, गुण अनंत जिस पास ।
सो भगवत परमात्मा, करै मेरे घट वास ॥
छिदै भिदै न कटै कमी, मरै न काहू काल ।
चेतन पिंडी नित रहे, ज्यों गूदड़में लाल ॥
दृष्टा ज्ञाता जौंहरी, तिन देखा सोई लाल ।
जिनकी दृष्टि कुदृष्टि है, तिन्हें कांचका ख्याल ॥
ज्ञानवान उस लालको, रत्न पिटारी राख ।
हृदय संदुकची मेलकर, पवन न दें तहां राख ॥
जब देखे तब मगन हों, मगनहिं निरखे आन ।
थगन करें मगनहिं रहें, मगनमें पावें ज्ञान ॥

दोहा कवितावलि.

प्रभु मूरत मन भावनी, श्याम मेघ सम भाय ।
मन मयूर देखन खुशी, बहु विधि नृत्य कराय ॥
शुद्ध आत्ममें श्यामता, कहांसे आई भाय ।
आतम छोड़ा कर्म मल, तन पर प्रगटो आय ॥
भव्यनको प्रतिबोधती, श्याम लता इस भांति ।
देखहु अपनी आत्मा, भरी कालिमा पांति ॥
याहि जान निश्चय गहो, तुम स्वरूप तो शुद्ध ।
मैल मिटावन काज अब, यतन करो हो बुद्ध ॥
भगवतवाणी गुण भरी, गंगाजल ले हाथ ।
धोय धोय निर्मल करो, चतुराई के साथ ॥
जो कुछ मैल अब गाढ़ है, नहीं छुटत इस राह

ध्यान तपाग्नि जलाईये, हृदय कमल के मह ॥
शुद्ध सुवर्णके रूपको, धारेगो निजराम ।
चमके ज्ञमके फटिक ज्यों, परमातम गुणधाम ॥

चौपाई.

बहिरातमकी बात निराली । पगमें बेड़ी आपहि डाली ॥
आप धतूरो खाय रु रोवे । कभी न सुखकी निद्रा सोवे ॥
जहां जाय तंह कहे घर मेरो । अपने घरको चिन्ह न हेरो ॥
कर्म निकासे जब बिलखावे । फिर भी सच्चा भेद न पावे ॥
रे मन ! धार हृदय संतोषा । जगचित्र अस्थिर पनका दोषा ॥
परकृत में क्यों आप लुभाया । हाय ! मोह तूने भटकाया ।
आशा पासि परम दुखदानी । चेतन ! निजबल करती हानी॥
शक्ति प्रगट कर क्यों है छिपाई । रतन ज्योति क्यों गुप्त रखाई ।
दांव यही करदे परकाशा । होवे मिथ्यातमका नाशा ॥
ज्योतिने ज्योति ढूंढ जब पाई । आकर्षण से जाय समाई ॥
द्वित्व भेदका खेद मिटाया । दो रंग मिल इक रंग बनाया ॥
बिछुड़ा मित्र जबहि मिल जावै । कहिये कौन न आनंद पावै ॥
सुमति नारिकी संगति पाके । ज्ञानी दास रहे नित ताके ॥
मगन होय अनमग नहिं धावें, निश्चय, आनंद सोही पावें ॥
चौरासीमें नाच नचावे, मिथ्या बुद्धि तिसे अकुलावे ॥
ढूंढत साता परनहिं आवे, हाय हाय ! कैसे दुःख पावे ॥
अंतर आतम दृष्टि पसारी, देखा तो है वह ब्रह्मचारी ॥
संग नहीं है तृष्णा नारी, आपो केवल चिद गुण धारी ॥
समाधान होकर जो देखा, तो वहां तीन रतन अस पेखा ॥

कर्म कीचमें लिप्त पड़े हैं ।चव कषाय विच मांहि अड़े हैं ॥
चारों लब्धि सुभट बुवाए । घेर लियो चहुं दिशते जाए ॥
पंचमी करण लब्धि से भाई । तीव्र कषायन आड़ मिटाई ॥
मिथ्या दुष्टा सखि संग लेके । जाय छिपे तव ठंडे होके ॥
तीनों रतन दृष्टि कुछ आए । फिर भी कषायन आड लगाए ॥
बारह वृत तलवार सम्हारी । तब वे भाग गये चितहारी ॥
तदपि उन्हें नाहि थिरता आई । दुष्ट दुष्टता नाहिं तजाई ॥
पंच महाव्रत खडग सुधारी । नाश करनकी विधी विचारी ॥
कर संग्राम घोर तव तिनसे । द्वादश थाने वे सब बिनसे ॥
अंतर आतम आतम पायो । तीन रतन निर्मल झलकायो ॥
देख लिये त्रिभुवन इक आने । ज्ञेय यथारथ सब विधि जाने ॥
आकुलताका वंस गिरायो । निराकुलित हो सुख दरसायो ॥
मगन हुओ निज गुण रस माहीं । ग्रहण करोगे शिवकी वाहीं ॥
मुक्ति नार भी मन मगनाई । पुहुप वृष्टि कीनी हरसाई ॥
दोनों मिलकर भेद मिटाया । जान आनका खेद मिटाया ॥
मुकति नार जो अंग लगावे । काल अनत मगन हो थावे ॥
याभे झूठ नहीं है भाई । सत्यातमकी यही वड़ाई ॥

तन विकारके होत ही । मन विकार होजाय ॥
साता कहीं पावे नहीं । अंतरंग अकुलाय ॥
धर्म ध्यान मन बीज है । जो मन सुखमय होय ॥
भाव तरंगी सत उठै । परमातम पद जोय ॥
मुनि गण तव रक्षा करत । मन रक्षाके हेत ॥

धर्म ध्यान में नित रमे । जो अनुभव रस देत ॥
तन विचारको प्राप्त कर । मन विकार नहिं होय ॥
हैं थोड़े संसारमें । पी निजानंद तोय ॥

अनुभव ज्ञानानंदका । अनुभव निजका सार ॥
जो डूवे अनुभव विषै । नहिं डूवे संसार ॥
परमातमने औषधी । दीनी ज्ञान वताय ॥
जो याको सेवन करे । बंध सकल मिट जाय ॥
मैं रोगी अज्ञानसे । ना सूझत सत राह ॥
सत संगति औषधि विना । मिटे न मनकी दाह ॥
होवे जव पुनका उदय । मिले संगति सार ॥
वचनामृत पिये विना । दुःख पावत संसार ॥
परमातम अनुभव विमल । जो पावे रस खान ॥
प्रगट होत सुख सास्वता । चढ़त ज्ञान सोपान ॥
क्रम क्रम से किरणावली । फैले करती जोर ।
जो अनादि अज्ञान तम । घंटे घटै दु.ख घोर ॥
हर्षित हो नाचे हिया । देख नारि शिव रूप ॥
वासे मिलनेके तईं । उमगत चेतन भूप ॥
जात सर्व सुध मूलके । मगन एक ही तान ॥
ऐसे ध्यानी हो गये । रहा न जगसे ध्यान ॥
अपने ज्ञानानंदमें । पाकर गुण अमलान ॥
राजत हैं निज आपमें । करत लोक सन्मान ॥

गज़ल.

जो आनंद हैगा निजघरमें, नहीं परमें प्रगट होता।
जो ज्ञानी है निजानंदका, नहीं दुख सुख उसे होता ॥टेक
करोड़ों रोग और व्याधि, अगर तन मनमें आती हैं।
निराश होकर चली जातीं, असर उस घटपे नहिं होता ।१।
कहां सुवरण कहां लोहा, रतन अरु कांचका अंतर।
कहां है चेतना सुखमय, कहां जड़रूप है थोता ।२।
जो जडमें मोह करते हैं, वही भवमें विचरते हैं।
उन्हींको राग द्वेषोंमें, क्षणिक दुख सुख निकट होता ।३।
जो अपनी निधिका स्वामी है, उसे क्या और धन चाहिये।
वह सुख सागर मगन रहके, सुज्ञानानन्द मय होता ।४।

दोहा.

आतम अनुभव कीजिये, रे चेतन दिलदार।
छोड़ सकल ममता समल, लीजे शिव सुख द्वार।

जग देखी माला सुलभ, पहर कंठ सुजान।
छूट जाय सब भ्रम तभी, उपजै केवल ज्ञान।
इस मालामें पुष्प सब, एक रूप गुण पूर।
जाकी अनुपम गंधसे, होत गंध सब चूर।
राग बढ़त नहिं देखते, पर हो अस्त स्वरूप।
यद्यपि सुन्दर सुघट तन, मोह बिगर एक रूप।
सम्यक् दर्शन बोध व्रत, जाकी शिखा निहार।
दश पुष्पनकी माल यह, अनुभव रस करतार।

हृदय कंठ निर्मल लसे, ताको भूषण मान।
तीन लोकको सार रस, प्रगट देख मति मान।
निज आतमको नाम शुभ, सगुण ज्ञान भंडार।
बार बार बोलत तिथे, इक इक पुष्प मंझार।
यह ही उत्तम पद विमल, है पदस्थ यह ध्यान।
निज रसना रटना करै, होत परम कल्याण।
छोड़ सकल जंजालको, त्याग सकल भ्रम जाल।
करे ग्रहण निज गुण अटल, होय त्रिलोकी लाल।
जैन धर्मको सार यह, या बिन सब खटराग।
जिन याको जाना नहीं, वृथा भजन पर राग।
या मालके फेरते, तृपत होत चित कूर।
निज अमृत पीवत रहे, सुखकवि होत अनूर।

राग.

ये चेतन तेरी बतियां दिलको लुभावें।
दिलको लुभावें तनको रिझावें॥ ये चेतन०॥ १।
जगत जालमें मोहने फंसाया, वाका मन घड़कावें॥ ये० ॥२॥
राग द्वेष भव पिंजर घड़ने, सुन सुन डर भय खावें॥ ये० ॥३॥
सुमतिके घर मंगल बाजें, कुमति सखी बिललावें॥ ये० ॥४॥
अनुभव रस टपकानेवाली, मिथ्या ताप मिटावें॥ ये० ॥५॥
सत्य अबाव सकल सरगसे, सर्व त्रिलोक दिखावें॥ ये० ॥६॥
भेद ज्ञान निर्झर ज्योतिसे, निज निज निज अपनावें॥ ये० ॥७॥
द्रवत अतिन्द्री अनुपम पाकर, सुखकवि रंग मचावें॥ ये०॥८॥

शैर।

कर्म विधि आवत निकट, निज रसको देनेको जमी।
छिप गये निज कंदरामें, छोडकर झंझट सभी।
शत्रु जो बंधनको करता, लाजकर रस्ता लिया।
इस तरह हैगे उड़ाते, कर्म रजको वे सभी।
तन लगा ससारमें, पर मन लगा निज राहमें।
जीव जडसे नहिं बंधे, नहिं दुख उठाता है कभी।
जडमें जो चेतन वसे, उस ओर दृष्टि निज करें।
मार्ग निर्मल जो सरल, उससे न टलते हैं तभी।
जिसने जाना अपने घरकी राहको कैसे फिरे।
मोह रस मीठा मिला, छोड़े चतुर नर नहिं कभी।

पद.

जिनवाणी तेरी, सतनि सुखदानी।
जिन २ मानी, तिन भवहानी ॥ सं० १ ॥
चित अनादि भव भर्म भमे था, एक स्थान धरानी ॥ जि० २ ॥
जिनके घटमें समझ पड़ी है, हुई कर्मकी हानी ॥ जि० ३ ॥
द्रव्य लिंग मुनि परिश्रम करके, नहिं चित्त ठहरानी ॥जि० ॥४॥
गज तिर्यंच करी सरधा हुए, पार्श्वनाथ ज्ञानी ॥ जि० ॥५॥
अनुभव अमृत रस नित झरता, पीवत दु.ख हानी ॥ जि० ॥६॥
जो नित सेवे सो सुख वेवै, होवे अचल ज्ञानी ॥ जि० ॥७॥

दोहा.

निज संगी जब पास है, तब है आनंद गाढ़।
जब वियोग वाका भयो, हुवो चित वे आड़।

नहीं सुख विरसन विष, नहीं ज्ञान कुमतीन ।
जिन रस नहि बूझा विमल, जान्यो रतनन तीन ।

शैर.

जगतमें सार जो तन है, वह सब तनसे निराला है ।
नहीं मृत लोक भूपरसे, वो ज्ञानामृतका प्याला है ।
जिसे देखन उमड़ चाले, त्रिगतिके जीव हर्षित हो ।
वह अनुपम कांति धारी है, वह सत्संगति शिवाला है ।

दोहा.

कर्म शत्रु हरता प्रभू, राजै जा घट द्वार ।
संबर होवे कर्मका, मिले सु अनुभव सार ॥
परमातम पद दीपिका, जाके करमें होय ।
थूल सूक्ष्म सूझे सभी, बाधा करे न कोय ॥

शैर

सत् कालको सत् कार्यमें, जिसने लगा दिया ।
आनंदमई रूप चिदातमका पा लिया ॥
जिस कार्यसे कि आत्म हो कर्मोसे निराला ।
वह कार्य आत्म करता है, अपने ऊपर वाला ॥
कर्ता है वही कर्म वही नित्य करण है ।
परणाम आत्मशुद्धिमें चढ़नेकी धरण है ॥
संसारका न काम न हवा मोक्ष चरण है ।
कोई न संग साथी न कुछ जन्म मरण है ॥
हैगा न कोई शिष्य गुरु और न कोई देव ।
आपी अनाम सिद्ध रहे ज्ञानमें स्वयमेव ॥

धारा बहे अपार निजानंद जल भरा ॥
कल्लोल इसमें करना है आतमको सुख परा ॥

पद.

शिव मंदिरमे जाना है चेतन ॥ टेक ॥ शिव० ।
भूल अनादि हुई आपकी, नहीं निजको पहचाना है ॥ चे० ॥
भवदधिमें निज कल्लोल करते बहुत ही दुःख उठाना है ॥
धरम नावको ग्रहण करनमें, आलस चितमे ठाना है ॥चे०॥
गुणन ग्राम है अभिराम, नहिं निजको भेद पिछाना है ॥
भर्म कर्ममे फंसकरके तू, चौगतिमें भरमाना है ॥चे०॥
तीन लोक प्रभुता वस्ती, तुझमें तू अद्भुत ज्ञाना है ॥
नाम लिये से तेरा जगका, होता निज कल्याणा है ॥चे०॥
ज्ञानामृत सागर है इसमें, नित्य स्नान कराना है ॥
कर्म मैलको मुझे इक क्षणमें, धोकर सर्व वहाना है ॥चे०॥

दोहा.

शुभ मारग भी जाल है, और अशुभ भी जाल ।
जो यामें फंस जात है, मिलत न आतम लाल ॥
समता भी जबही जगै, जब हो शुद्ध स्वभाव ।
राग द्वेषकी बात मे, नही ज्ञान लखाव ॥
अध्यातम मय ग्रन्थका, पाठ सहज सुख रूप ।
समता शुद्ध स्वभावको, प्रगटावत एक रूप ॥
अंतर अपने आपमें, राजत ज्ञान विलास ॥
पावत ताके भेदको जिस घट आत्म प्रकाश ॥
अनुभव दीपक हाथ धर, देख त्रिलोक मझार ।

सांचा रतन जो आप है, जान त्याग व्यवहार ॥
अविनाशी आताप हर, जगत शिरोमणि जान ।
ताकी जो भक्ति सरस, होत आपनो मान ॥
पद पद टार निहार निज, जो सब सुख रस दैन ।
अकलंकी भव सुख हरण, बोलत सांचे बैन ॥
निज अनुभव सम्यक् दशा, धार त्याग व्यवहार ।
ज्ञानानंदी रूपमे, रहे शुद्ध अवतार ॥
परमातम आतम विमल, तीन लोकमें सार ।
ताको ग्रह कर बैठिये, क्षणभंगुर संसार ॥
देखत देखत जात हैं, दिन अपने दिन रात ।
जिन निजको पाया नहीं, वृथा तिन्हें नर-गात ॥
जन्मसे मै नंगा हुआ, लाया नहीं कुछ साथ ।
अब कितना एकत्र कर, भार बढावत माथ ॥
जब जावें संग ना चले, कोई पदारथ साथ ।
क्यों नहि निज दर्शन करै, जो छोडे नहि हाथ ॥
हर घटमें पर घट रहे, स्याद्वाद सुख खान ।
जाकी किरया होत ही, प्रगटे आतम राम ॥
निज विचार सम्यक दशा, है समकित व्यवहार ।
ताही ते हित होत है, जो त्रिभुवनमें सार ॥
सगति गुणकारी सदा, जो होवै सतभाव ।
विना सत्य किरया विफल, होत वृथा ठहराव ॥

———

चेतन चिन्ता छोडकर, देख लोक व्यवहार ।
राग द्वेष करता नहीं, हो ज्ञानी अविकार ।
सर्व जीवमें एकसा, जो है अनुपम रूप ।
सो ही अपने ध्यानमें, राजत ज्ञान स्वरूप ॥
अनुभव कर निज रूपका, श्रद्धा श्रुतमय धार ।
सम्यक रत्नत्रय मिले, शिव मग रोचन हार ॥
ज्यों दिन भर उद्यम किये, कब हूं प्रापति होय ।
त्यों समता अभ्यासमें, अनुभव कबहूं होय ॥
प्रेमदृष्टि खींचत उसे, जासे वाको प्रेम ।
निश्चय हो प्रापति कभी, ये ही जगका नेम ॥
परमातमके प्रेम सों, लोक सकल उल्लंघ ।
पहुचत शिवके महलमें, मिलत सिद्धको संग ॥

ब्रह्मवियोग.

काल अनादि जग फिर्यो, भटकत मग मग धाय ।
ब्रह्म दरश पाया नहीं, कैसे चित ठहराय ॥ १ ॥
जा वस्तूको देखता, तामे ब्रह्म न पाय ।
समय समय अकुलात है, क्षणभर थिर न रहाय ॥ २ ॥
रस विन कैसे मगन हो, चित पदार्थके वीच ।
जग द्रव्यन देखे वह, पड़े विरसकी कीच ।
कंचन घट दीसै नहीं, अंतर मदिरा गंध ।
जो लुभाय करमें धरै, होत दृष्टि सो अंध ॥ ४ ॥
दीपक लौ सुन्दर लखी, धायो चेतन राय ।
ब्रह्म वियोगी आत्मा, रह्यो सदा विलखाय ॥ ५ ॥

क्षत्री कुलमें आयके, गर्व कियो नर नाथ।
आशा नित प्रति यह रहे, मिलै ब्रह्मरस साथ ॥ ६ ॥
चाहे फल हो आमका, बोवत पेड़ बबूल।
इस मूरखकी मानता, होवे नहीं कबूल ॥ ७ ॥
सर्व जन्म ढूंढ़त फिरा, मिला ब्रह्म नहि कोय।
अन्त विलख मन होयके, अन्य शरण गयो जोय ॥ ८ ॥
वेद पुराण मथे बहू, न्याय छंद पढ लीन।
वाद काव्य में चतुर है, ब्रह्म स्वपग तर दीन ॥ ९ ॥
कोट जतन कर चित्त से, धन लायो निज हाथ।
हाय! हाय! करता रहा, चला न कुछ भी साथ ॥१०॥
दृष्टि उलटीके किये, कैसे ब्रह्म लखाय।
जित देखे तित दुःख सहै, साता रंच न पाय ॥११॥
पर सेवामें रति करी, पेट भरन से काज।
खाट बाढ़ जाना नहीं, वाका कौन इलाज ॥१२॥
आशा नित सुख मिलनकी, यों ही रही घट माहि।
काल निशाना बाजिया, अच्चान्चक रहि जांहि ॥१३॥
नरभव उत्तम पायके, ब्रह्म परश नहि होय।
हाय! हाय! इस कष्टकी, क्षमता करै न कोय ॥१४॥
अन्वेषण करता फिरा, मिला ज्ञानी इक ठौर।
ब्रह्मनाथ पाऊं कहां, जाऊं तित मैं दौर ॥ १५ ॥
काल अनादि दुःख सहा, मिला सुख नहि रंच।
हाय! ब्रह्म तू कित बसे, तुझ बिन है परपंच ॥१६॥
ज्ञानी बोला धीरधर, ब्रह्म तुही है आप।

समाधान चित्त देखिये, मिटैगा सब आताप ॥१७॥
तेरी दृष्टिमें लगा, अंजन मोह अपार।
श्वेत रूपको कृष्णमय, देखत है ससार ॥१८॥
अंजन अपना धोइये, ज्ञानामृत जल लाय।
दृष्टि सूधी होयगी, येही एक उपाय ॥१९॥
सम्यक् दृष्टि होत ही, सूझे खूबी रंग।
जित देखे तित ब्रह्म है, रहे वही नित संग ॥२०॥
प्रति वस्तुमें ब्रह्म रस, टपके अति उमगाय।
वा रसके नित पिवन तें, आप ब्रह्म मय थाय ॥२१॥
राज काजमें बैठके, न्याय करै पुर जोश।
ब्रह्म दरश वहा भी लखे, प्रीति ब्रह्म मय कोश ॥२२॥
यत्कदाचि दुष्टन प्रते, युद्ध करनको काम
बाहर तो अस्त्र चले, घटमें ब्रह्मको नाम ॥२३॥
बाहरमें शत्रु अहै, अंतर ब्रह्म स्वरूप।
करुणा चितमे धारते, सदा ब्रह्मके रूप ॥२४॥
काव्य न्याय अरु छंदमे, ब्रह्म लिखो हरखाय।
पुस्तक नाना पठनमें, ब्रह्म रह्यो झलकाय ॥२५॥
क्रय विक्रय बहुतहि करै, धनको करै उपाय।
धन्य दृष्टि यह नर तनी, ब्रह्म वियोग न पाय ॥२६॥
सेवा प्रभुकी करें, देखें ब्रह्म स्वरूप।
आज्ञा माफिक चालते, रहैं न दुखका रूप ॥ २७ ॥
दृष्टि उलटी आपगा, दृष्टि सूधी ब्रह्म।
प्रीति सत्यका फल यही, मिल्यो ब्रह्म सो ब्रह्म ॥२८॥

जगत माहिं दुःख सुनत ही, होय अचंभ अपार।
लहे निरंतर सुखको, पहर ब्रह्मका हार ॥ २९ ॥
धन धन ज्ञानी वीर जी, दियो ज्ञान जल स्वच्छ।
काला अंजन धोय कर, निर्मल होगा अच्छ ॥ ३० ॥
अहा हा! दृष्टि सूधी हो गई, मिला ब्रह्म दिल्दार।
नया रंग मेरा खिला, हुओ आज अवतार ॥ ३१ ॥
ब्रह्ममई सुख दर्शको, दर्शन हुवो अवार।
आधि व्याधि सब ही टली, हुओ सार संसार ॥ ३२ ॥
धार मगनंता ब्रह्ममें, चलूं ब्रह्म मग बीच ॥
मगन मगन होके रहू, मगनामृत पय सींच ॥ ३३ ॥
यही जतन है सुखका, अन्य न कोई दिखाय।
ब्रह्म वियोगी आतमा, निश्चय ब्रह्म लखाय ॥ ३४ ॥

पद.

कर अनुभव चेतन प्यारे।
निजानन्द निज रस पावे प्रगटे ज्ञान कला रे ॥ १ ॥ क० ॥
डाल विषय विषको भव अंदर, निर्विषय चित्त बना रे।
राग द्वेष दो शत्रू तेरे, तिनसे मोह हटा रे ॥ २ ॥ क०
भेदज्ञान पैनी छैनी ले, भेद भाव घटवा रे।
आप रूप सत चिद्विलासमें, तन बच मन ठहरा रे ॥ ३ ॥ क०
बार बार गुण मनन किये तें, गुण समुदाय मिला रे।
सुखदधिमें हो मग्न ज्ञान लहि, लोक शिखर घर पा रे ॥४॥ क०

दोहा.

है अपार निश्चल निधि, सब गुणसागर नाथ ॥

मुनि गण नित आनंदसे, धोवत है निज गात।
चार ज्ञान धारी मुनी, कर प्रवेश हुलसाय।
तो भी पार न पाईये, तब गुणनिधिकूं जाय ॥
मति ज्ञानाधारी पुरुष, केवल ज्ञानी रूप ।
किस विधि वर्णन कर सकें, आनंद कंद अनूप ॥
अक्षत निर्मल हंस सम, शोभत चरणन पास।
चन्द्र ज्योतिसे मिल गये, रह्यो न भेद प्रकाश।
आतम निर्मल ज्योतिसे, करत स्पर्धा आज।
संगति परमातम मिले, जड़से होत सुकाज।

दोहा.

निर्भय कर मुझ दासको, गुणकूं दियो विशाल।
अक्षय मय नित प्रति रहे, क्षनी न कोई काल ॥

चौपाई.

विंजन नाना भांति संजोये, तुम ढिग आन सभी सुख होवें ॥
ताते तौ रे चरणन डारे, इनसे होत न काज हमारे ॥

कुंडलिया.

क्षुधारोग व्यापे अधिक, भूलत है निज धर्म ॥
यातैं ताको नाशिये, मिले अनूपम मर्म ॥
मिलै अनूपम मर्म, गुप्त निधि परगट होवे ॥
काल अनादि भ्रमण, टालकर सुखसे सोवे ॥
करै न कबहीं शोक, हर्ष नहिं कबहीं रोवै ॥
समताका जल लाय , आतमा नित प्रति धोवै ॥

दोहा.

जो स्वरूपसे भिन्न है, होय न एकी रूप ॥
ताहीकी संगति किये, भरमत तिहुं जग भूप ॥
संगति निज सम्बन्धकी, करना है सुखदाय ॥
पर परणति व्यापे नहीं, निज गुण नित्य बढ़ाय ॥
पर वस्तु संसर्ग ये, छोड़त नहिं दिन रात ॥
आकुल व्याकुल राखके, नित्य बढ़ावत साथ ॥
धूप सुगंधि खेयके, वर मांगू यह आज ॥
पर पद काष्ट जलाइये, होत न इनसे काज ॥

जन्म कल्याणक

दोहा.

अचल मेरु पर ले चले, हरि प्रभु निज भुज धार ।
पांडुक निर्मल तल विषे, पधरायो सुख सार ॥
पंचम दधिसे कलस भरि, लाये देव उठाय ।
प्रथम दुतिय हरि मोद धर, श्री जिन धार चढ़ाय ॥
सुवरणको चांदी कियो, हिम गिरि प्रगटयो आज ।
चन्द्र कांति मानो प्रगट, पूजन निज सिरताज ॥
सब देवनने मौन धर, देख सुरंग विशाल ।
तृपति होत नयना नहीं, क्षण २ नावत भाल ॥
निश कालीमें जगत जन, ढूंढ़त हैं सुख ठौर ।
चन्द्रनाथ परगट करें, तिन सम कोई न और ॥
या हेतू तैं जिन तुमें, वंदत है भवि जीव ।
इन्द्रादिक नाटक रचैं, भक्ती करैं सदीव ॥

शैर.

तुझे मात घरमें वहा जब कि लाये ।
पिता अपने घरमें है नौबत बजाये ॥
सभी याचकोंकि हृदयको बढ़ाये ।
त्रिलोकी प्रभू दर्शकर हर्ष पाये ॥

दोहा.

भव दुख हर्ता निरखकर, सुमरण कर वा काल ।
अर्घ देय भक्ति करूं, अनुभव होय विशाल ॥

दिक्षा कल्याणक

शैर.

सुदर्शनचक्र करमें ले, दिखायो रूप असलीको ।
सभी रिपु अंत बाहिरके, भजे हैं अपनी दिहलीको ॥
खड़ग जब ध्यानकी लीनी, शिथिल होकर गिरे है कर्म
जो बाकी थे उन्हे मारा, मिटाया अपना है सब भर्म॥

ज्ञान कल्याणक.

भव पपीहा निज मुख खोले, बैठे हैं निश्चल मनसे ।
अमृत बूंद झड़ी जिन मुखसे, रोंये उठे तिनके तनसे ॥
जिन कमलोंपर पयरस चमके, त्यों चमके है उड़गनसे ।
चन्द्र सहित नभ शोभे जैसे, बैठे देखो गुण गणसे ॥

मोक्ष कल्याणक.

मध्यलोक जनकी संगतिको, छांड़ चले हो जिनराई ।
नहीं शोभे यह तुम्हें नाथजी, दीननसे मन हठवाई ॥
दाह ज्वरमें जलत जीव यह, रंच न साताको पाई ।

दयानिधि हो कैसे स्वामी, अचरज मनको अधिकाई ॥
निराले पंथमें चलकर, निराले धाम पहुंचे हो।
विषय जगके यहीं छांड़ें, मुक्त तिय रसमें ऐंठे हो।
न आना है न जाना है, शिवालय धाम बैठे हो।
तमाशा देखते जगका, अचल आसनसे बैठे हो ॥
न चिन्ता है न व्याधि है, न तन है रोग समुदायी।
न परका रंग है कुछ भी, निजातम रंगती छाई ॥
दुईका भेद सब टाला, बनाई खूब एकताई।
कि जिसके ध्यान करनेसे, मेरी शक्ति उमड आई ॥

दोहा.

जो सुख वेदे आपका, कहि न सके तिस काल।
वचन अगोचर याहिं ते, भाखत गणधरलाल ॥
सिद्धि रिद्धि घटमें भरी, देखी तुम परताप।
अब वाकों छोडूं नहीं, पुण्य होय वा पाप ॥
महिमा तेरी अगम है, गणधर लहैं न पार।
अनुभवमें आकर दिपै, अनुभव है जग सार ॥

शैर.

ज्ञान ज्योति तेरी झलकी अब, प्रगट्यो मग सुख सार प्रभु।
निज घर बाट चलत अनुभव संग, सुखदधि कोहि निहार प्रभु ॥

दोहा.

निज अनुभवमें दृष्टि धर, पर अनुभव मुख मोर।
कैसे मम कारज सरे, जाको ओर न छोर ॥
दास पुकारत आपतें, बार २ अकुलाय।

कोई मोंहि देखे नहीं; किस विधि प्राण ग्हाय ॥
चित कठोरता त्यागिये, करुणामृतको सींच ॥
दृष्टि मोपर कीजिये, रहूं शिवालय बीच ॥
वीतरागता छांड़कर हो, सराग जिनराज ।
इतना मम कारज करो, दीजे शिवको राज ॥
जो जैसो गुण धरत है, तिस गुण रूप पिछान ।
अपना स्वारथ करण में, राखत नाहीं ग्लान ॥
तातैं हूं निर्बुद्धि भी, तो मैं राग विचार ।
तोकू विनती करत हूं, अपना रूप विसार ॥
अचल चित्त तेरो निरख, हो उदास इस आन ।
छिनक बैठ चिंतन करूं, कि ये पद लेहुं महान ॥
भिक्षा वृत्ति त्यागिये, मन आया यह ध्यान ।
निज पद निजमें बसत है, आप मिलावैं ज्ञान ॥
ज्यों बादलको देखके, वन मयूर नृत्यंत ।
शांत छवी देखी जभी, मन आनंद करंत ॥
तव चरणन कारण मिले, सूझे मार्ग विशाल ।
यातैं तव पद पूज्य हैं, तीन रत्नकी माल ॥

षट् कर्म-दोहा

चेतन निश्चय देव हैं, निज घट देवल बीच ।
अनुभव पूजा नित करो, मिटे असतकी कीच ॥ १ ॥
षट् द्रव्यनमें गुरु बड़ा, सब गुरुओंका भूप ।
ध्यान मग्नतामें रहन, है गुरु विनय अनूप ॥ २ ॥
तीन गुफामे जो छिपा, मम प्रीतम गुण सार ।

नित्य रटन ताकी करूं, यह स्वाध्याय विचार ॥ ३ ॥
ज्ञान सुजल तिहुं लोकते, आतम विवर मंझार ।
एक स्वथल एकत्र कर, संयम रतन सम्हार ॥ ४ ॥
आतम ज्ञान अनल जगी, निज सुवर्ण तंह डार ।
निश्चय तपमें तपन कर, हो क्षणमें अविकार ॥ ५ ॥
त्याग सर्व पर द्रव्यको, निजको निज धन देत ।
वही पात्र, दाता वही, सत्य दान फल लेत ॥ ६ ॥

दोहा.

अनुभव सागर आपका, बसे आपके बीच ।
जो जाने सो अनुभवे, करे करमको नीच ॥
अनुभवके दातार प्रभु, शुद्धातम करतार ।
परम निरंजन ज्ञानमय, सकल कर्म हरतार ॥

कुंडलिया.

चित्त चलत भव रूपमें, पावत नाहीं ज्ञान ।
जब आपा आपा लखे, मुदित हो चेतन प्राण ॥
मुदित हो चेतन प्राण, कथन भव भ्रमण मिटावे ।
कर प्रकाश निज नयन, जगतको सत्य लखावे ॥
भेद ज्ञानको डाल, दुग्ध जल भिन्न करावे ।
दुग्ध दुग्ध पी लेय, तृप्तता आतम पावे ॥

दोहा.

जगमें आतम भूप है, सब द्रव्यन सरदार ।
तीन जगतमें एक ही, जाति स्वरूप विचार ॥
निज घट देवल सारमें, चेतन देव सु सार ।

सार सार ये मनन कर, प्रगटे अनुभव द्वार ॥
परमाननको त्याग कर, निज माननमें भीज ।
पर संगति ना कीजिये, होत ज्ञान निज छीज ॥
समता दायक सुख करन, ज्ञानानंद विकाश ।
परम ध्यान मय आप मय, निज चैतन्य विलास ॥
ज्ञाता दृष्टा खोजकी, नैननके पुट बीच ।
मून्द आंख जिन देखिया, प्रगटा आप नगीच ॥
परमातम निज रूपमें, परमानंद स्वभाव ।
जो जाने अरु अनुभवे, त्यागे सकल विभाव ॥
सुख सागर आतम दरव, निज गुण रूप निवास ।
कैसे कर जानें उसे, नहिं जहां अस विलास ॥
पर प्रत्यक्ष है आपको, उस विन लखा न जाय ।
जाके जाने सरदहे, वाहीमें मिल जाय ॥
समता है जग व्यापनी, समता है जग सार ।
जो समतामें रत रहे, पहनें मुक्ताहार ॥
भेद ज्ञान जड़ी सही, जो खावे मति मान ।
सर्व आपदा टालके, लहे सो केवल ज्ञान ॥
निजमें निजता राखिये, परता सकल विलाय ।
निजता में निज रंग मिले, सब संशय मिट जाय ॥
जगकी रीति निवारिके, शिवकी राह संवार ।
जो आतम अनुभव करे, तेह सुखी संसार ॥
श्रद्धा विन पावे नहीं, रुचि भक्ति सत् प्रेम ।
जिनमत श्रद्धा राखिये, विन याके सुख केम ॥

धर्म आपमें ही बसे, धर्म कहीं नहिं और ।
जो जाने निज आपमें, वे सबमे सिर मौर ॥
निज शंकाको टालकर, देखो हिय दरम्यान ।
प्रभु भक्ति क्षणमें मिले, करे सकल कल्याण ॥
निज पद उलखन कठिन हैं, पर पद सुगम विचार ।
जो निज पद अनुभव करें, ते पावें भवपार ॥
ज्ञानी जाने आपको, धर चित अपना सार ।
जातें भव थिति सब कटे, मन होवे गुण द्वार ॥
शिव मारग नहिं दूर है, आप लगन आधीन ।
जो शिवकी इच्छा करें, तिन्हें होय स्वाधीन ॥
भव बाधा जगकी मिटा, निजगुण समरथ पाय ।
जो जाने निज आपको, भवके द्वन्द मि ाय ॥
आकुलता सारी टले, टले सकल व्यवहार ।
निज गुण दृष्टि देत हीं, उपजे समगुण सार ॥
याहीमें रमिये सदा, याहीमे धर प्रीति ।
याहीसे सुखदधि मिले, है अनादिकी रीति ॥
निज अनुभव रुचि सार है, सोही अमृत कूप ।
जो वाके रसिया भये, मिटी कर्मकी धूप ॥
निज सत्ता चैतन्यमें, सुख अनुपम अविकार ।
ता तज विषय विकारमें, दुख है अपरंपार ॥
अपनी इच्छा रोकिके, कीजे निस्पृह भाव ।
निज आंगनमें के लिये, येही सौख्य उपाय ॥
समता रमता मगनता, चेतनता परकाश ।

आप समाधि कीजिये, होवे आप विकाश ॥
निजपद अनुरागी भये, घर पर पद वैराग ।
वीतरागता क्या वनी, मानो जलती आग ॥
कर्म सघन वन जा जलैं, नहीं धुआं नहिं ताप ।
सुख सागर अदभुत वना, शमे सकल आताप ॥
श्री जिन चन्द्र जिनेशको, वन्दों वारम्बार ।
स्वपर प्रकाशन हेतु मैं, जाऊं अनुभव द्वार ॥
वाके भीतर देख लूं, राजत चिन्मय नाथ ।
ताके दर्शन करत ही, छूटत चिरको साथ ॥
समल कर्मको दूर कर, निर्मल पद निज ध्याय ।
परमारथ पद दीपिका, निज पदमें प्रगटाय ॥
केवल शुद्ध स्वभाव मय, सब सत गुण आधार ।
परगुण तज निर्गुण वनो, रह्यो सगुण संचार ॥
सुखोदधिमें मग्नता, कर्म पक छा लेय ।
फटिक समान निज आत्मको, देख देख सुख लेय ॥
परमातम निज रूपमें, परम ज्ञान भंडार ।
जो जाने माने सुधी, लहे परम सुख सार ॥
जिन जाना निज रूपको, निज गुण श्रद्धा धार ।
ते शिवगामी हो गये, दूर किया संसार ॥
परम निरजन ज्ञान जो, समता रस कारतार ।
वन्दु है कर जोड़के, परमामृत दातार ॥
निज निधि विलसन कारणे, परनिधि तज दुखकार ।
जो निजमें निजता गहे, तिस सम नहिं कोई सार ॥

आपा परके भेदको, जो जाने मति मान ।
सो संवर साचा करे, भरे नित्य कल्यान ॥
परमारथ निज शक्ति है, जामें गुण अविकार ।
जो मानै जानै सही, हो सद्गुण भंडार ॥
अपना आपा जानकर, परसे नेह हटाय ।
स्वातम रूपमें थिर रहे, निज गुण प्रेम बढ़ाय ।
चर्चा धार्मिक तत्वकी, है सुखमय अरु सार ।
ताको नित प्रति कीजिये, जो सूखे संसार ॥
परमातम निर्मल मई, सर्व कुकर्म विहीन ।
जो ध्यावे निज रूप सा, होय कर्म मल छीन ॥
परम निरंजन ज्ञानमय, अविनाशी अविकार ।
जो जाने निज रूपको, सो तरले संसार ॥
जगमें सार सु आप है, जामें निश्चय धार ।
चित अपना प्रमादसों, रे भाई निरवार ॥

परम पूज्य निज अर्थको, साधि भये गुणवृन्द ।
आनंदामृत पुञ्जको, वन्दत हो सुखकंद ॥
संशय तिमिर विनाशने, परम भानु सुखकार ।
ज्ञान कमल प्रफुलित बने, जग उद्धारण कार ॥
हरष जगमें कुछ नहीं, नहिं विषाद कुछ होय ।
जो समता चितमें धरे, राग द्वेष नहिं होय ॥
परम रंग आनंद मय, समरथ समरस धार ।
जो डूबे वामें सदा, हो अविचल अविकार ॥

करुणा जामें नित रहे, नहि करुणाका काम ।
जो जैसा वैसा रहे, यह अनुभवका दाम ॥
कर अपना हित आप ही, हो स्वतंत्र सुखरूप ।
मान जान निज ध्यानको, सो सुखमय चिद्रूप ॥
परमातम आपहि लसै, आपहि माहिं समाय ।
आपहि जाने आपमें, आपहि रंग जमाय ॥
परमातम निज धाममे, सकल शक्ति धरतार ।
महिमा जाकी अगम है, निज नैनन उद्धार ॥
समरसका धरता वही, समरसका चखनार ।
समता रमता परम है, समताका दातार ॥
जग मंदिरमें एक है, स्वपर प्रकाशन हार ।
जो देखे वाको मिले, निज अनुभवके द्वार ॥
परमातम निज रूपमें, सकल तत्व दातार ।
समरथ हो सब कालमें, जानत सब संसार ॥
आनंद मंदिरमें रहै, पड़े धर्मकी कीच ।
संशय सागर शोखके, रहे ध्यानके बीच ॥

शेर.

निजानंद रूप आतमका, उसे देखा जमी जिसने ।
वही जगसे गया मानो, लिया है सिद्ध पद उसने ॥

दोहा.

निज वस्तु चिन्तन किये, होय स्वपर प्रकाश ।
जो निजको जाने नहीं, है सूना आकाश ॥

अथ अष्टानिका पूजन ।

स्थापना.

दोहा—निज आतम अभ्यासकी, खोज उठी हिय माहिं ।
नर भव बिन कैसे तपै, आतम आतम माहिं ॥
शुद्धातम जिनराज लखि, सम दृष्टि सुरलोक ।
भगत करैं इनकी सही, बाढ़े पुण्यका थोक ॥
जान अठाई पर्वको, देवन कियो विचार ।
नंदीश्वरमें जायके, करैं पूज चित धार ॥
अकृत्रम जिन बिंब तहं, अरहंत सम नहिं फेर ।
धन्य भाग उनका जिन्हें, मिलै दर्श सुख ढेर ॥

त्रिभंगी.

हम किस विधि जावैं, पूज रचावैं, गुणगण गावैं प्रभुजी के ।
अष्टम दीपा, वह सुख रूपा, वह गुण कूपा वह प्रभुजी के ॥
शक्ति नहीं नरकी, ढाई उलंघनकी, पद परशनकी प्रभुजी के ।
हम इतही मनावें, हृदय थपावें, चरण झुकावें प्रभुजी के ॥

(स्थापना मंत्र कहना.)

ॐ ह्रीं नंदीश्वर द्वीपे बावन जिनालयेभ्यो अत्र :—

राग.

है जन्म मरण दुखकार, किस विधि दूर करूं ।
नित जरातन व्यापे आय, क्यों कर कष्ट हरूं ॥
विद्वज्जन वैद्य अनेक, यत्न अनेक किये ।
मैं जल क्षीरोदधि लाय, तन मन धार दिये ॥

दोहा—तदपि न उपशम हो सक्यो, तीनों में दुख कोय।
तव पद जल प्रभु दे तु हैं। इन बल नष्ट जु होय ॥जलम्॥

द्रुत बिलंबित छंद.

भवाताप विनाशन काजजी। अधिक शीतल चंदन लायजी।
वपु विषे बहु बार लगायजी। तदपि ताप अधिक ही थायजी॥

दोहा—वीतराग जिन शांत तुम, सम समरथ जगताप।
चंदन चरण चढ़ात हूं, शांत करो मम आप॥ चंदनं॥

मालिनी छंद.

अक्षत वश रहके घूम संसार भारी।
सुख दुख बहु माने, होय आकुल अपारी॥
निर्मल अक्षत ले, भोगके वार बारी।
यतन किये पर भी, तृप्तता नाहि धारी॥

दोहा—अक्षय गुण धरता तुम्हीं, अक्ष अतीत जिनेश।
अक्षत साम्हें धरत हूं, काटो अक्ष कलेश॥ अक्षतं॥

त्रिभंगी छंद.

तन अशुचि दिखावे, मल उपजावे, मलहि वहावे द्वारनिते।
ऐसे तन माहीं, रुचि कर माहीं, विस्मर चाही, दारनिते॥
तृष्णा नित वाढ़ी, आरत काढ़ी, भव थिति गाढ़ी कारनिते।
ले सुरतरु पुष्प, तनहि सपरश, तदपि न हर्ष मारनिते॥

दोहा—रतन सुवर्णनि पुहुप बहु, लायो तुम ढिग नाथ।
धारत हों चरणन ढिगे, करहु ब्रह्म मम साथ ॥पुष्पं॥

भुजंगप्रयात छंद.

क्षुधा नित्य बाधा मेरे तनमें लावे।

मुझे परवशीकी दशामें धरावे ॥
अमोलक इस तनका समय सर्व लेके ।
निजातमके अनुभवमें किंचित् न देके ॥

दोहा—अमृत सम बहु वस्तु ले, भरो उदर मैं नाथ ।
तदपि ज्वाल कुछ ना मिटी. आकुलता भई साथ ॥
अब पुकार तुमसे करुं, धर कर चरु तुम पास ।
क्षुधा रोग मम नाशिये, तृप्त होय सब आस ॥चरुं॥

राग.

है मोह महा दुखकार, तन मन दाह करे ।
भ्रम डाला हृदय मंझार, ज्योति न दृष्टि परे ॥
रतनन दीपक कर जोय, जोया आप थली ।
नहिं नजर पडा चिदमार, जो है सर्व वली ॥

दोहा—सो दीपक तव चरण ढिग, मेलहूं हे जिनराय ।
ज्ञान दीप हृदि दीजिये. जासों मोह नशाय ॥दीपं॥

भुजंगप्रयात.

कियो अष्ट कर्मन मुझे जेर भारी ।
फिराये हैं चहुंगतिके भीतर अपारी ॥
इन्हें दग्ध कारण दशांगी जलाई ।
जले दुष्ट नहिं यह रह्यो मैं रिसाई ॥

दोहा—सोही धूप लायो यहां, अरज करूं मन लाय ।
शक्ति हृदय प्रकाशिये, कर्म भस्म ह्वै जाय ॥ धूपं ॥

त्रिभंगी.

जो जो फल पाया, नहिं थिर थाया, लोभ बढ़ाया रस देके ।

बहु काल गमाया, दुःख बहु पाया, तव ढिग आया नुति देके ॥
बादाम छुहारा, फल शुचि धारा, भाव सम्हारा थुति देके ।
शिव फल प्रभु दीजे, अफल हरीजे, निजसम कीजे गुण देके ॥
दोहा—जग पूजत जगदेवको, चाहत फल क्षय रूप ।
मैं पूजूं शिव देवको, फल क्षय लहुं अक्षय रूप ॥ फलं ॥

दोहा—

जल, चंदन, अक्षत पहुप, चरुवर दीपक धूप ।
फल धर अर्घ बनाइये, अर्घ न होय गुण रूप ॥

कुंडलिया

अर्घ न होय गुण रूप, अर्घ्य तेरे पद स्वामी ।
अर्घ देत पद तीर, मिटे भव भवकी खामी ॥
धन्य यह वासर आज, मिला गुण सार मनोहर ।
अर्घ्य रूप शिव महल, राजकर होऊ सुखकर ॥
नित्यानंद जिनेशमें, रह्यो मगन जो सत्व ।
पर परको परसम लखा, जाना अनुभव तत्त्व ॥ अर्घं ॥

जयमाल.

दोहा—अष्टम क्षेत्र विशालमें, कार्तिक फाग अषाढ़ ।
देवन जा भक्ती करी, रचि रचि पद अतिगाढ़ ॥

स्रग्विणी.

आठमों दीपमें योजना सार है, एक सो त्रेसठा कोड़
विस्तार है, भवन बावन्नमें मूर्ति जिन पूजिये ।
मन वचन कायसे तनमयी हूजिये ॥
चार दिशि चार गिरि, धूम्र मयी राजहीं, जासको देखते
नील गिरि लाजहीं ॥ भवन० ॥ १ ॥

एक २ ओर चार बावरी सुजल भरी, श्वेत रत्नकी शिला
मानो विराजती खरी ॥ भवम० ॥ २ ॥
एक एक वापिका मध्यगिरि दधिमुखं, वर्ण उज्वल
किधौं पिंड हिम सन्मुखम् ॥ भवन० ॥ ३ ॥
वापिका कोन दोमें, शिखर दो लसें, रक्त वर्ण देख सांझ
रंग लाज कर नशें ॥ भवन० ॥ ४ ॥
तीन दश गिरि महा एक दिश धरे, काल पावसे-
में सांझके हैं बादले खरे ॥ भवन० ॥ ५ ॥
बावनों परवतों पर हैं जिन मंदिरा, रत्नमयी दीपते सूर्य-
की सी धरा ॥ भवन ॥ ६ ॥
एक प्रासादमें बिम्ब शत आठ हैं, बाल भानु तेज सम
रत्न मयी ठाठ हैं ॥ भवन० ॥ ७ ॥
उर्ध्वशत पाच धनु पद्म आसन धरे, हैं वृषभनाथ
वृषरूप मय अवतरे ॥ भवन० ॥ ८ ॥
ज्यो समोशर्णमें नाथ छवि देखिये, मान भवनाशको
मान थंभ पेखिये ॥ भवन० ॥ ९ ॥
देखते देखते मोह नशो जात है, वीतरागता प्रभातमें
जु तम विलात है ॥ भवन० ॥ १० ॥
देवि देव गाय गाय भक्तिको बढ़ाव हीं, सिंधुकी तरंग
चन्द्र देख जो उमडाव हीं ॥ भवन० ॥ ११ ॥
दर्श सम्यक्त रत्न पाय घट बीचमें, बन गये जौंहरी
सत्यकी खीचमें ॥ भवन० ॥ १२ ॥
हो मगन भक्तिमें पुन्य पैदा किया, चितहर रत्न ज्यों

रंक हाथे लिया ॥ भवन० ॥ १३ ॥
भव्य जन भाव धर पूजको रचाव हीं । भाव शुद्ध नाटकों सु आपमें नचाव हीं ॥ भवन ॥ १४ ॥

घत्ता.

परमातम जिनबिंबमें, राजत हैं सुख रूप ।
जो पूजे शुद्ध भावसे, पावे भाव अनूप ॥

पद.

अनुभव सागर न्हाले, ए चेतन ! ए चेतन ! अनुभव सागर न्हाले ।
पर अनुभवमें पर सम हूवे ऐसी बान मिटाले ॥ रे चेतन० ॥
एकको तज चौथेमें आतू, सत्य सुपंथ सम्हाले ॥ रे चेतन० ॥
पंचमको धर प्रीति पूर्वक, अनुभव चाह बढाले ॥ रे चेतन० ॥
आप जान चौदहसे बाहर, निश्चल तत्व जमाले ॥ रे चेतन० ॥
जिन जिन निजकी शरण लही है, मुक्त हुए तू ध्याले ॥ रे चेतन० ॥
सुखसागर है गुण सागर है, निर्भय आनंद पाले ॥ रे चेतन० ॥

शैर.

निजमें स्वरूप आपका देखा परम विमल ।
छूटा सकल कुधंघ कि पाया तुझे अमल ॥
संताप भव समुद्रका अब तो मिटा दिया ।
सुख शांति मई रागका सागर बहा दिया ॥
चरणोंमें श्री जिनेन्द्रके सिरको झुका दिया ।
चैतन्य धाम आपका आपे में पा लिया ॥
करमोंकी बेड़ियोंको काटना ही सार है ।
जिससे कि जीव बुद्धका जगसे निकार है ॥

दोहा.

सुखकारी आतम दरब, विसरो नहीं कदापि ।
जिनमत धारो प्रेमसे, ज्यों निजमें निज थापि ॥
होवे सुख संपति महा, पावे निज समुदाय ।
जाने निज प्रिय वंशको, कभी न चित अकुलाय ॥

पद.

करले मन निज चिन्तवना ।
त्याग त्याग परके पद पदको, आप भजो सुख करना ॥कर०॥
समता सखी वडी गुणदाई, हित सुप्रमसे करले रमना ॥कर०॥
भेद विकल्प कल्पना तजके, हो अभेदमें आप जगना ॥कर०॥
जगत असार सार नहिं कोई, समयसारका करले भजना ॥कर०॥
सुखसागर वर्द्धनको शशि भा, परमामृतदा दुःख हरना ॥कर०॥

पद.

चेतन निज देव हृदय, देवलमें थापूं ॥
जडको पर संग त्याग, आपमें सुराचूं ॥
समरस जल ढार, प्रेम भक्तिसे चढाऊं ।
अनुभव निज गंध--उदक, लेय दुःख हटाऊं ॥ चे० ॥१॥
आतमके आठ गुण, अष्ट द्रव्य शुच लेय ।
पूजा कर देव सार, कर्म अल उथापूं ॥ चे० ॥ २॥
पूजक और पूज्य भाव, परताका है लखाव ।
याहि त्याग निज समाधि, विकल्प तज राचूं ॥ चे० ॥ ३॥
सागरसुख शुद्ध सार, यामें नहिं कोई विकार ।
लीन होय एक रूप, अनुभव रस चाखूं ॥ चे० ॥ ४॥

पद.

सफल कर नर भव, हे मन आज । सफल० ।
क्यों परमें निज पद रति माने, ना जाने निज काज ॥सफल०॥१॥
मोह नींदमें भूल रहा है, तीन लोकको राज ॥सफल०॥२॥
पुद्गल निज सूरत वहुरंगी, देख भ्रमत वेलाज ॥सफल०॥३॥
जीव द्रव्यकी शुद्ध दृष्टिमें, लखे शुद्ध सुख साज ॥सफल०॥४॥
पर अनुभूति मिटा दे चेतन, निज अनुभव हिय छाज ॥सफल०॥५॥
सुखसागरकी मिष्ट तरंगे, ले ले आनंद काज ॥ सफल ॥ ६ ॥

गज़ल.

निजातम ध्यानमें दिलको, लगाना ही मुनासिब है ।
कर्म फंदोंसे निज चेतन, छुटाना ही मुनासिब है ॥
अनादि भर्म वश भूला, न पाया आपका दर्शन ।
मोहतम हर स्वदीपकका, जलाना ही मुनासिब है ॥
जगतके द्रव्य वहुतेरे, सदा ही खींचते मनको ।
उन्हें समताकी दृष्टीसे. भुलाना ही मुनासिब है ॥ २ ॥
कषायोंने जकड़ रक्खा, भ्रमाया भवमें आतमको ।
उन्हें निज ध्यान वह्निसे, जलाना ही मुनासिब है ॥ ३ ॥
हे सुखसागर, सम्हल जा तू, न कर चिंता किसी परकी ।
रतनत्रयमें निजातमको, चलाना ही मुनासिब है ॥ ४ ॥

पद.

निज घर देख अरे मन मोही, क्यो परमें अकुलाया है रे,
आप वना चित्पिंड ज्ञान घन, आनंद मय उमगाया है रे ॥
दर्शन ज्ञान चरण मय साहब, है अखंड ज्ञाता दृष्टा वर ।

एकाकी निस्पृह अविनाशी, शुद्ध फटिक मय छाया है रे ॥१॥
कर्म कालिमा जड़ निश्चेतन, तुझसे नहिं संबंध एक क्षण ।
नभ निर्मल ज्यों गुण रत्नाकर, सहज स्वात्म रस पाया है रे॥२॥
देही देव देह देवलमें, राजत निश्चल ज्योति विमल हो ।
पूजा भाव करत मन सेती, भवदधि ऊपर आया है रे ॥ ३ ॥
सुखसागर है सबसे निराला, निजाधीन अनुभव अविकार ।
मज्जन यामें करत प्रेमसे, आप शुद्ध थिर थाया है रे ॥ ४ ॥

लावनी.

निज पदमें धर राग, जगत् वैराग तथा सुख पावेगा ।
चेतन मेरे आपका रूप हृदय झलकावेगा ।
भय अरु ग्लानि नहिं संशयकी कोई बात रही ॥
नहि पुद्गल नहि काल नहीं आकाश न धर्म अधर्म मही ।
राजत शुद्ध स्वभाव सार, निज चेतन धातु रूपमई ॥
करके मनन निज शक्तिका तू, सब भव नीर सुखावेगा ॥चे० १॥
भ्रम बुद्धिने दिया झकोरा परसे मिल बैठा इक हो ।
नरनारी धन गृह सम्पत्तिमें, मानी है अपनायतको ॥
है स्वारथके सगे सभी, हरदम देखें निज मतलबको ।
शक्ति रहित जब हूआ न करता, प्रेम कोई मदसे भर हो ॥
ऐसे जगसे मोह दूर कर, तब शिव घरमें जावेगा ॥ चे० ॥२॥
तज अजीवका संग भेद विज्ञान, खड़्ग करमें लेले ।
जीव अरूपी है अनंत पर, एक रूप सा तू गहले ।
शुद्ध अभेद दृष्टिमें आकर, समता रसमें तू पगले ॥
शुभातम है तुही आप, सोहंकी नित सुमरण कर ले ॥

वीतराग सम्यक्त नीरसे तू निज तृषा बुझावेगा ॥ चे० ३ ॥
कर प्रमादको चूर आ-में, मग्न सदा रहना अच्छा ॥
विचलित हो जब शास्त्र रसपान सदा करना अच्छा ॥
अथवा कर उपकार जगतका, प्रेम धाम रहना अच्छा ।
अक्ष विषय या बदलेकी कोई चाह नहीं धरना अच्छा ॥
सुखसागरके निर्मल जलसे, निश्चय शुद्ध हो जावेगा ॥चे०४॥

पद.

संवर सुखकारी, रे मन संवर सुखकारीरे ।
येही आश्रव भाव वहावे, कर देखो यतनरे ॥ १ ॥
पाप पुण्यकी कौन कहानी, शुद्ध भाव जपनारे ॥ २ ॥
परमातम आतम सम जाने, शांत दशा वरनारे ॥ ३ ॥
आपी ज्ञाता ज्ञेय ज्ञानमय, चिन्मूरत सजनारे ॥ ४ ॥
षट रस भिन्न स्वरसको चाखे, हो अनुभव अपनारे ॥५॥
हो एकाकी शुद्ध चिदानंद । मुक्ति पुरी गमनारे ॥ ६ ॥
सुख सागरमें कर कलोल नित, थिर सुखिया रहनारे ॥७॥

पद.

जानो मन निज रीति, जानो० ।
क्यों पर परिणति मोह रच्यो है, क्यों धारे है भीति । जानो० ॥
सर्व संकल्प विकल्प छोड तुं, जान आत्म अनुभूति ॥ जानो० ॥
आतम गंगा स्वच्छ शांत रस, धारत है इक सूति ॥ जानो० ॥
उठत तरंग आत्म अनुभवकी, करत कलोल मीन परिणतिकी
॥ जानो० ॥
इस गगामें मग्न रहो थिर, करके आत्म प्रतीति ॥ जानो० ॥

मोक्ष सुखदधि पहुंचेगी यह, या संग जाओ यह, नीति ॥जानो०॥

पद.

तन दे मोह महा भयकारी, रे मन क्यों पर परणति धारी।
ना कुछ तजना ना कुछ लेना, यह विकल्प है अति दुखकारी॥
मैं चेतन सर्वांग पूर्ण रस, निज अध्यातम रसका धारी॥१॥
मन वच काय करैं बहु कर्म, भरैं वे ही ताफल दुख सर्म॥२॥
मैं नहीं कर्ता मैं नहीं भुगता, मेरी परणति सबसे न्यारी॥
मैं ज्ञाता द्रव्य अविनाशी, सकल विभाव रहित सुख राशी।
संतोषी कृत कृत्य अनादि, तारण तरण भवोदधि खारी॥३॥
आप रूप नौका समधारी, तामें चढ़ आपी इक सारी।
सुख सागरके मोक्ष द्वीपमें, पहुंच पहुंच रे चित मन धारी॥४॥

गज़ल.

परम संतोष पानेका निजातम ध्यान कारण है।
वही समता प्रचारक है, वही भव दुःख निवारण है॥
हजारों कष्ट सहकर, बहुत शुभ भावना कीनी।
न पाया शुद्ध उपयोगा, जो आनंद रस प्रसारण है॥ १ ॥
पुण्य औ पाप सम बंधन, न है कुछ रागके लायक।
जो हैं स्वाधीनता सेवी, उन्हें बंधन कुमारण है॥ २ ॥
भवोदधिमें वही नौका, जो अपना रूप है सुन्दर।
उसी पर होना आरोहन, वही संत भव उधारण है॥ ३ ॥
सुखोदधि अपने अंदर है, उसीका रस परम मीठा।
जो पीते सार सुख पाते, यही निज ज्ञान धारण है॥ ४ ॥

गज़ल.

परम समता सुखासन पर मैं चेतनको बिठाऊंगा।
सदा कर भक्ति निज पदकी सुखी गुणमय बनाऊंगा।
बहुत ढूंढ़ा नहीं पाया, कोई जो परणमें निजसा॥
यह पर आशा निपट भोली, इसे दिलसे हटाऊंगा॥ १॥
कर्मके बन्धनोंको जो महा दृढ़ तरमहा भारी।
उन्हींकी रस्सियां इक दम शिथिल हलकी कराऊंगा॥ २॥
हर्ष अरु शोक बहुतेरा, किया पर परमे उलझेरा।
हुई तृप्ति न कुछ निजकी उसी सबको भुलाऊंगा।
जो है स्वाधीन सुख सागर न ह्या है कष्ट खारीपन॥
परम अनुभव सु अमृत पी, तृषा चिरकी मिटाऊंगा॥ ३॥
अकथ आनंदको पाकर सभी दुविधा मिटा शमहर।
मैं भवके जालको तज कर, शिवश्री धाम पाऊंगा॥ ४॥

दोहा.

श्रीजिन चरण प्रतापते, दुःख शांत हो जाय।
जो जाने निज आपको, ताका विघ्न नशाय॥

सोरठ.

मोह नींदके जोर, मैं पापी अज्ञान हूं।
जो जागे भ्रम छोड सो ज्ञानी पुण्यात्मा॥

दोहा.

ज्ञान बिना इस जीवको, कोहि न राखन हार
ज्ञान सहाई जीवका, ज्ञान बिना नहिं सार॥
निज परको जो जानता, सोई ज्ञान अविकार।

हंस समान स्वभावमें, ज्ञानी वर्नन हार ॥
निज चेतनके ज्ञानसे, मिटै राग अरु द्वेष ।
निज सत्तामें रमि रहे, गुण अनंतको पेष ॥
परमातम निज ध्यानमें, राजत हैं सुखरूप ।
जो जानें निज आपको, पावें उन्हें अनूप ॥
जन्म मरणसे रहित जो, निज परमातम देव ।
सिद्ध रूप सुविशुद्ध जो, करहु तासु पद सेव ॥
निज पर जाना सत्य सा, जिनमें निज उपजाय ।
रस अमृत आपी चखा, भव बाधा मिट जाय ॥
भव बाधाके नाशसे, प्रगटे चेतन वस्तु ।
जे जाने अरु अनुभवे, सो पावे निज वस्तु ॥
परमातम निज रूपमें, राजत है सुखकार ।
ताकी पूजा वन्दना, करना है हर बार ॥
शुद्ध दृष्टिसे देखिये, सर्व ही जीव समान् ।
कौन क्षमा कासे करे, है व्यवहार अमान ॥
जिसने तज परभावको, भूत भविष वर्तमान ।
निज स्वभावमे रमि रहे, निष्कषाय सो जान ॥
तीन लोकके जंतुको, क्षमा करी यक बार ।
समता सार सुहावनी, राजत है तम हार ॥
पर पद तज निज पर लखा, कर अनुभव चिद्सार ।
ज्ञान सरूपी आत्मा, प्रगटे अनुभव द्वार ॥
निज सत्तामें ज्ञान मय, करत कलोल अपार ।
जासे देखे आपको, जो त्रिभुवनमें सार ॥

निज आतम निजमें लखे, परमातम दरसाय।
भव बाधा सारी टलें, निज अनुभव रस पाय॥
जब श्री गुरुके चरणमें, रहै कोई सत जीव।
ताके हृदय कपाटमें, प्रगटे ब्रह्म सदीव॥
एक रूप चेतन विना, सब जग शून्य लखाय॥
जिस विच निज आतम बसे, शोभा अधिक दिखाय॥
मन चंचल पक्षी अजब, थिर कबहूं नहिं होय।
सद्गुरु वाणी सुननसे, निश्चलता अवलोय॥
हरदम श्री गुरु मननसे, शोक ताप मिट जाय।
समता रस प्रगटे तभी, आनंद अनुभव थाय॥

सोरठा.

जग मंदिरके बीच, जिन सुमरो आनंद धरो।
होवें ज्ञान सदीव, मोह भ्रमर सहज हिं टरे॥

लावनी.

शिव दारा पर दारा है, पर दारामें रमना चाहिये।
करके पाप यह होके निर्धन, नित्य रहना चाहिये॥
करे अनंते पति जिसने अरु करेगी वर बहुत जगमें।
पट् मास अर अष्ट समयमें, छः सौ आठ वरती जगमें॥
एक समयमें सबको एकसा, सुख दिये रहती हैं जगमें॥
साधु संत जो प्रीति करत हैं, तिन्हे भी चहती है जगमें॥
जगत नारसे मोह हटाके, यासे प्रेम करना चाहिये॥१॥
पंच अनुत्तर और अनुदिशमें, जितने अहमिंदर रहते।
बत्तिस तेतिस सागरमें हैं, आगे जाम वाकूं रटते॥

लौकान्तिक जो ब्रह्म ऋषि हैं, नित्य चित्त वामें रखते ।
इन्द्र और समकिति देव सब, अपनी रुचि वासे करते ॥
तृप्त करन हारी सुनारिसे, सर्व द्वेष हटना चहिये ॥२॥
भोग भूमिके नर पशु, नित प्रति इन्द्री भोगोंको करते ।
जो सम दृष्टि अंतर दृष्टि, अपनी नित वामें रखते ॥
कर्म भूमिके नर पशु जे, सम्यग्दर्शन कर निज सजते ।
हो आशक्त वाके सद्गुणमें, सदा प्रीति वासे जडते ।
है अनङ्ग अदभुत यह, याके महल वसना चाहिये ॥ ३ ॥
मारण ताड़न छेदन भेदन, शूलारोपण सहते हैं ।
सम्यक् धारी नरक विहारी, तिस पर भी तिस चहते है ॥
तीन लोकके संत भव्य, तिसके ही मोहमें पडते हैं ॥
इससे विलक्षण कलित्र सेवा, भव भवमें भ्रम सड़ते है ॥
सुखदधि सुतको जनने हारी, शिवरमनी वरना चाहिये॥४॥

दोहा.

मोह महातम दुःखद अति, व्यापत हृदय मझार ।
आतम अनुभव भानुकर, हरत करत सुखकार ॥
विश्व आपका आपमें, नहीं पर द्रव्य निवास ।
जो जानै मानै सुधी, मिटत सकल भव त्रास ॥
परम ब्रह्म निज रूपमें, राजत है सुख दाय ।
जो याको अनुभव करै, कर्म बध मिट जाय ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र मय, चेतन नित उर धार ।
जासो झट बंधन खुल्ले, पहुंचे मुक्ति मंझार ॥
आप आप ही मुक्त है, आपी शिव सुख धार ।

आपी ज्ञानी ज्ञान मय, आपी भवदधि तार ॥
पर पुरुष आतम दरव, सो मैं हूं सुखरूप।
जो जाने निज आपको, सो है वस्तु अनूप ॥
परसे नाता तोड़ मन, निजको तू धर ध्यान।
आप आप सा होयगा, कर अपना कल्याण ॥
जगत रागमें सुख नहीं, सुख आपी दरम्यान।
निश्चय आपा परखिये, होकर नित एक तान ॥
परिणति अपनी देकर, हो मन धीर सदीव।
जाते उत्तम सुख मिले, मिटै विरोध अतीव ॥
परसे भिन्न जबहि उल्लेखा, तब आपी में आपा लेखा।
अब गुण पूरण है सुख सागर, जो जाने पीवे गुण गागर।
निज परिणति आनन्द मय, मोह तिमिर हरतार।
जो जाने माने सुविधि, होवे गुण भंडार ॥
संख्यातीत अगाध गुण, शब्द रहित सुखसार।
जो जाने माने सुनर, होवे गुण भंडार ॥
सब औपाधिक भावसे रहित परम अविकार।
जो जानै मानै सही, होवै गुण भंडार ॥
परम निरंजन सद्गुणी, सब संकट हरतार।
जो आपा अनुभव करे, छूटे सब संसार ॥

सोरठ

मोह नींदके जोर, मिथ्याती भर्मै सदा ।
देखे नहीं निज ओर, भरे विपत संसारमे ॥

दोहा:

परम धाम है आपमें, जामें चित धर सार ।
तो ममता डायन टले, कर्म बंध हो क्षार ॥
परम निरंजन सुखमई, ज्ञाता दृष्टा आप ।
जो जाने माने सुबुध, मेटे पुण्य रु पाप ॥
परमातम निज देहमें, ताको भज इक वार ।
तो फसाद सारा टले, मिले मोक्षका द्वार ॥
आतम राम प्रतापसे, टूटत कर्म कापट ।
निज स्वामी दर्शन मिले, छूटे जगका हाट ॥